मुद्रक—

मूलचंन्द किसनदास कापड़िया,
"जैनविजय" प्रि० प्रेस–सूरत।

प्रकाशक—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
दिगम्बर जैन पुस्तकालय, चन्दावाड़ी–सूरत।

भूमिका ।

एक स्त्रीशिक्षा प्रेमी भाईकी इच्छावश श्री जिनसेनाचार्य व गुणभद्राचार्य रचित महापुराणके अनुसार श्री जयकुमार सुलोचनाका आदर्श गृहस्थ-जीवनका चरित्र स्त्रीसमाजके लिये अति उपयोगी जानकर अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार आधुनिक भाषा व रीतिमें लिखा गया है।

इससे सर्व भारतकी स्त्री समाजको भी लाभ पहुंचेगा। भारत० दिगम्बर जैन महिला परिषद्को उचित है कि वह इस ग्रन्थका प्रचार करके हमारे परिश्रमको सफल करे।

स्त्रीशिक्षाका प्रेमी—

तारदेव-
बम्बई,
ता० १८-१२-२१

ब्र० शीतलप्रसाद,
ऑ० सम्पादक "जैनमित्र"
सूरत।
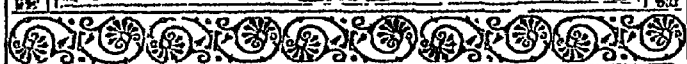
अर्पणपत्रिका।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला
परिषद्की संचालिका
श्रीमती जैन महिलारत्न

मगनबाईजी

सुपुत्री स्वर्गीय दानवीर जैनकुलभूषण

सेठ माणिकचंद हीराचंद जौंहरी
जे० पी० बम्बईके कर कमलोंमें

— स्त्री समाजके कल्याणार्थ —

यह "सुलोचना चरित्र" ग्रन्थ
सादर समर्पित
करते हैं।

प्रकाशक।

पूज्य ब्र० शीतलप्रसादजी रचित इस स्त्रियोपयोगी धार्मिक ग्रन्थका विशेष प्रचार हो, इसलिये इसको भारत दि० जैन महिला परिषदके खर्चसे "जैन महिलादर्श" नामक स्त्रियोपयोगी मासिक पत्रके दूसरे वर्षके ग्राहकोंको भेंट स्वरूप दिया गया है व शेष प्रतियां विक्रीके लिये निकाली गई हैं। यद्यपि इसका नाम सुलोचना चरित्र रखा गया है, परन्तु वास्तवमें यह जयकुमार–सुलोचनाचरित्र है जो धार्मिक कथानक होनेसे स्त्री पुरुष दोनोंको उपयोगी है–जिससे हरएक स्त्रीपुरुष अपना चरित्र धार्मिक व नमूनेदार बना सकता है व साथमें अपना समय भी आनंदमें निर्गमन कर सकता है। आशा है जैन समाजमें इस ग्रन्थका अतीव आदर होगा और इसकी दूसरी आवृत्ति शीघ्र ही प्रकट करनेका हम सौभाग्य प्राप्त कर सकेंगे।

प्रकाशक।

शुद्धाशुद्धि।

पत्र	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१	फुटनोट	२–२–२३	२–३–२२
७	४	हिमत्पव	हिमवत्प
९	८	अज्ञ	अड्डा
१०	२३	....णी	शुभाचरणी
१४	८	जिनेन्द्राचा	जिनेन्द्रार्चा
२०	३	चाहिये चाहिये	चाहिये
२३	२२	विचिचांगद	विचित्रांगद
२४	१९	दशन	दर्शन
२९	१६	जयकुार	जयकुमार
,,	,,	चित्र	चित्त
३१	२	अर्ककीर्तिका	अर्ककीर्तिका युद्ध
३४	४	ता	त्वं त्वत्पिता
,,	८	यौ	सुतस्तस्यौ
३६	१९	आकार	आकर
४३	२१	लिये	युद्धके लिये
४७	९	दुग गुप्तिमय	दुर्ग गुप्तिमय
४८	६	सेनापतिन	सेनापतिने
,,	९	पुण्यहार	पुंण्पहार
५७	१९	वतनमें	वर्तनमें
५८	९	अपन	अपने

५९	१६	अंतरिणी	व्यंतरिणी
,,	२१	अंतरिणी	व्यंतरिणी
६०	१०	कामार्ति	कामर्ति
,,	११	हतुः	हेतुः
,,	१२	कांतकाति	कांतकीर्ति
,,	१६	।वदग्धा	विदग्धा
६१	१९	अहत	अर्हंत
,,	२१	लगन	मगन
६२	११	समर्थयत्	समर्पयत्
६४	९	फलों	फूलों
,,	१९	मत्र	मंत्र
६५	१९	....नहीं	और उनके पास कुछ नहीं
७९	४	आसाता	असाता
,,	१९	दगे	देंगे
८४	२३	थे	रखते थे
९३	१	जय....	जयकुमार सुलोचना श्री

अनुकरणीय शास्त्रदान।

हमारे चिरपरिचित स्वर्गीय दानवीर जैन कुल-भूषण सेठ माणिकचंद हीराचंदजी जौंहरी जे० पी० बम्बई निवासीके भतीजे सेठ ठाकोरदास पानाचंद जौंहरी (स० मंत्री मा० पा० दि० जैन वोर्डिंग-रतलाम)की सुयोग्य व शिक्षित पत्नी फुलवंतीबाई (सुपुत्री, सेठ नानचंद अमीचंद गांधी, पंढरपुर)की गत वर्षमें सिर्फ १७ वर्षकी आयुमें अकस्मात अकाल मृत्यु होगई थीं जिनकी स्मृतिमें सेठ ठाकोरदासने हम व जैनमहिलारत्न श्रीमती मगनबाई-जीकी प्रेरणासे २००) शास्त्रदानके लिये दिये हैं जिससे यह "सुलोचनाचरित्र" ग्रन्थ "जैन-महिलादर्श" के २रे वर्षके ग्राहक व ग्राहिकाओं-को भेंटस्वरूप दिया गया है। आशा है इस शास्त्रदानका अनुकरण जैन समाजके अन्य श्रीमान् भी करेंगे अर्थात् मृत्युके स्मरणमें छोटा मोटा शास्त्र दान अवश्य करते रहना चाहिये।

प्रकाशक।

फुलवंतीबाई,

(स्वर्गीय सौ० पत्नी, सेठ ठाकोरदास पानाचंद जौहरी–बम्बई)

जन्म सं० १९६२ पंढरपुर मृत्यु सं० १९७९ चैत्र सुदी ११

जैनविजय प्रेस–सूरत।

*सुलोचनाचरित्र।

प्रथम अध्याय।

राजा अकंपन।

श्री ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकरके समय इस भरतक्षेत्रमें काशी देश प्रसिद्ध था, उसमें बाराणसी नगरी अति शोभायमान थी जिसको अब बनारस कहते हैं। इस नगरीमें ऊंचे २ मकान आकाशको स्पर्श करते हुए अपनी सुन्दरतासे स्वर्गके विमानोंको लज्जित करते थे। श्री महापुराणमें श्री जिनसेनाचार्यके शिष्य श्री गुणभद्राचार्य कहते हैं:—

बाराणसीपुरी तत्र जित्वा तामामरीं पुरीं।
अमानैस्तद्विमानानि स्वसौधैरिव समुहसीत्॥१२४॥

अर्थात् वहां वह बाराणसी नगरी स्वर्गपुरीको जीतकर अपने अगणित महलोंसे मानों स्वर्गके विमानोंको हंस रही थी। इस नगरीकी शोभा कहनेमें नहीं आ सक्ती। सुवर्णरत्नसे जडित महलोंकी पंक्तियां स्फटिक पत्थरके समान निर्मल मार्गके दोनों ओर पथिकको अपनी ओर खींचती हुई आश्चर्यमें डाल देतीं थीं। मार्ग बिलकुल स्वच्छ रहते थे। वहांके निवासी चतुर, विवेकी

* प्रारंभ फाल्गुन सुदी ४ संवत १९७८ ता० २-३-२३ अम्बाला-छावनी।

और धर्मलीन थे, इससे मलीनताके कारणोंको दूर रखते थे। वे जानते थे कि मलिनता रहनेसे जंतुओंकी उत्पत्ति होती है जिससे उनकी हिंसा व अपनी हानि होती है। वहांके बाज़ार भिन्न २ पदार्थोंके समूहसे भरे हुए अनेक थे। अन्नहाटमें पर्वतके समान ऊंचे अन्नके ढेर देखनेमें आते थे। वस्त्र हाटमें नानारंगके वस्त्रोंसे अलंकृत दूकानें मार्गगामीको कुछ न कुछ खरीदनेके लिये बाध्य कर देती थीं। बड़े २ राजमार्ग थे, जिनपर रथ, हाथी, घोड़े आदि इधरसे उधर बेरोकटोक जातेथे, तौ भी पैदल चलनेवालोंको कोई बाधा नहीं प्राप्त होती थी। पशुओंके जलपानके लिये मार्गोंके मोड़पर सुन्दर कुन्ड स्वच्छ जलसे भरे हुए रहते थे। दिवसमें ही नगरके मार्ग जागृत रहते थे रात्रि होते ही वे निद्रित होजाते थे। उनमें नरनारियोंका व रथादिका गमनागमन बहुत ही अल्प होता था जैसे निद्रामें कभी २ स्वप्न आजावे। कारण यह था कि वहांके लोग संतोषी और धर्मप्रेमी थे, संध्याके पूर्व ही दुकानें बन्द होजाती थीं। लोग रात्रिको निश्चिततासे थोड़ी देर धर्मध्यान व धर्मचर्चा करके अपने मित्रों व कुटुम्बके स्त्री पुत्रोंके साथ अनेक प्रकार हितकारी गोष्ठी करके मनको आल्हादित करते हुए दिवसके कामकाजसे आकुलित मन और श्रमप्राप्त शरीरको निराकुल और स्वास्थ्य-युक्त बनाते थे। रात्रिके समय कोई भी खानपान, रसोई बनाना, चक्की दलना, कूटना आदि आरम्भोंको नहीं करता था—आरंभोंका कार्य सूर्यकी साक्षीमें किया जाता था जिससे किसीको भी हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील व परिग्रहकी तृष्णा इन पांच पापोंमें निरर्गल होनेका साहस नहीं होता था। मात्र वे गृहस्थ

स्त्री पुरुष जब संतान प्राप्तिकी भावनासे गर्भाधान संस्कार करते थे तब न्यायरूप काम पुरुषार्थके आरंभमें वर्तते थे। इस कार्यको भी लज्जाका अंग समझकर सूर्यके उदय रहते हुए कभी भी करनेका साहस नहीं करते थे। यह एक बड़ा उत्तम समय था। प्रजामें धर्मप्रेम कूट २ कर भरा हुआ था। प्रातःकाल यत्र तत्र नरनारी ध्यानमें मग्न व पाठको बोलते हुए दीख पड़ते थे। थोड़े दिन चढ़े मार्गमें जानेवाले जिन मंदिरोंके भीतर होनेवाली पूजाकी ध्वनिको सुनकर क्षणेक बैठ जाते थे व कहीं धर्मोपदेशका धारावाही प्रवाह वहता था, उसके शब्दसे चलते २ कुछ देर रुककर धर्मामृत पान कर लेते थे। दोपहरके पहले यत्र तत्र जैन साधुगण आहारार्थ जाते व आहार लेकर लौटते हुए अपने शांत दर्शनसे भक्तोंके मनको आनंदित करते थे। दिनमें ५-६ घंटे बड़े २ बाजार व्यापारकी ध्वनिसे गूंज उठते थे। यत्र तत्र क्रय विक्रयके काममें पुरुषगण संलग्न थे। उस समय गृहस्थकी स्त्रियां गृहके सामानको शुद्ध करतीं, वस्त्रादि निर्मापण करतीं, शिल्पके काम करतीं व भोजनके पकानेका प्रबन्ध करतीं हुई दीख पड़ती थीं। नगरमें जैसे प्रातःकाल हुआ कि अनेक कुलीन स्त्रियां एक कलश मस्तकपर एक बगलमें लिये रस्सी और छन्नेको कंधेपर डाले हुए पानी भरनेको जाती हुई व लौटती हुई दीखती थीं। घरकी स्त्रियां अपने हाथसे भरे हुए पानीसे ही गृहकार्य करती थीं। पानी भरनेमें किसी स्त्रीको लज्जा नहीं थी। संध्याके पहले ही बाजार शून्यसे होजाते थे। जनसमूह भोजन पानसे निश्चित हो उपवनोंमें सैर करते थे—सूर्यको अस्त

होते देख बहुत नरनारी जगतका स्वरूप व अपनी पर्यायका अस्त होना निश्चयकर शांत हो ध्यान सामायिक करने लग जाते थे। नगरमें कोई भिक्षुक, दीन, दुखी नहीं दीख पड़ता था। नरनारी सब प्रसन्न थे, जो यह बतला रहे थे कि उनका राजा न्यायवान तथा प्रजावत्सल है और प्रजा पूर्ण संतुष्ट है। ऐसी मनोहर सर्व सुखपूर्ण वाराणसी नगरीमें नाथवंशमें उत्पन्न **महाराज अकंपन** राज्य करते थे, यह अकपंन साक्षात् अकंपन था। शत्रुसमूहके सम्मुख काम्पनेवाला न था। वीर क्षत्रिय रससे पूर्ण शस्त्रकलामें निपुण होनेपर भी नीति व धर्मशास्त्रका मरमी था। विद्वानों, साधुओं व धर्मात्माओंका सेवक था। सज्जनोंपर कृपालु परंतु दुष्टोंके लिये विकराल था। प्रजासे उचित कर लेकर भी दान देनेमें मुख्य था और प्रजाकी रक्षा व शिक्षाके लिये द्रव्य व्यय करनेमें संकोच नहीं करता था। राजा होनेपर भी अपनेको प्रजाका सेवक समझता था। प्रजाके सुखमें सुखी तथा प्रजाके दुःखमें दुःखी रहता था। इस राजाके महत्त्वमें श्रीगुणभद्राचार्य कहते हैं—

> न हर्ता केवलं दाता न हंता पाति केवलं।
> सर्वास्तत्पालयामास स धर्मविजयी प्रजाः॥१२९॥
> पारमात्म्ये पदे पूज्यो भरतेन यथा पुरुः।
> गृहाश्रमे तथा सोऽपि सा तस्य कुल वृद्धता॥१३०

भावार्थ—वह राजा मात्र प्रजासे कर ही नहीं लेता था किन्तु उनको दान भी करता था, वह केवल दंड ही नहीं देता था

किन्तु रक्षा करता था इस तरह वह धर्मविजयी राजा सबोंकी पालना करता था। भरत चक्रवर्ती जैसे श्री आदिनाथको परमात्मपदके कारण पूज्यनीय मानते थे वैसे महाराज अकंपनको गृहस्थाश्रममें प्रवीण होनेके कारण आदरणीय जानते थे। राजा अकंपनकी कुल वृद्धि ऐसी ही थी।

वास्तवमें जो देशका शासन करनेवाला हो उसका चित्त अपनी प्रजाके यथार्थ हितमें सदा रहना चाहिये और उसका व्यवहार ऐसा योग्य होना चाहिये कि जिससे प्रजाको कभी प्रच्छन्नरूपसे भी बुराई करनेका अवसर न मिले। जहांकी प्रजा शासकके अनुचित व्यवहारसे पीड़ित होती है वहांकी प्रजा भयके कारण प्रगट अपना दुःख न कहकर अंतरंगमें रुदन करती है और ऐसी भावना भाती है कि कब वह दिन आवे जब यह अन्यायी राजा हमारा शासन छोड़े अथवा इसकी बुद्धि न्यायमार्ग पर कब आरूढ़ हो। ऐसी दशामें प्रजा और राजा दोनों सुखकी नींद नहीं सोते हैं। राजाको भी प्रजासे खटका हो जाता है और परस्पर अविश्वास बढ़ जाता है। इसीको कंटकमय राज्य कहते हैं। राजा अकंपनका राज्य इस दुर्व्यवस्थासे बिलकुल दूर था। उसका मन वचन काय धर्म और नीतिमें मग्न था। वह परोपकार बुद्धिसे रात्रि दिन प्रजाकी हित कामनामें वर्तन करता था। ऐसे न्यायी क्षत्री राजाकी रानी श्रीमती **सुप्रभा** थी जो वास्तवमें अपनी प्रभासे रतिके रूपको जीतती थी। उस सौम्यमुखका दर्शन मनुष्योंके सिवाय पशु पक्षियों तकके चित्तको प्रसन्न कर देता था। वह रानी अपने पतिकी अनुगामिनी थी—पतिकी

आज्ञाका उल्लंघन करना पाप समझती थी। पति और पत्नीमें प्रेम रसका एकीभाव होना चाहिये सो दोनोंमें विद्यमान था। रानी सुप्रभा अनेक गुणोंसे पूर्ण थी। धर्मशास्त्रके रहस्यको जाननेवाली; धर्मकी क्रियाओंको सहृदय पालनेवाली, गृहके कार्योंका सम्यक् प्रबन्ध करनेवाली, कुटुम्बके प्राणियोंको अपने योग्य व्यवहारसे प्रसन्न करनेवाली तथा आत्मतत्वके ज्ञानसे निजानन्दका अनुभव करनेवाली थी। श्री जिनेन्द्र देव, निर्ग्रंथ गुरु और जिन धर्ममें श्रद्धावती थी। इन्हींको पूज्य मानती थी। इनके सिवाय रागी द्वेषी देव, परिग्रही गुरु और एकान्त धर्मको भूलकर भी नहीं मानती थी। जैसे निर्मल जलसे सींची हुई वृक्षकी बेल बढ़ती हुई उत्तम फलोंको प्रगट करती है वैसे रानी सुप्रभा राजा अकंपनके निर्मल गाढ़ प्रेमरूपी जलसे सींची हुई अनेक पुत्रोंको जन्म देती भई।

इस समय आयु बहुत बड़ी हुआ करती थी। यह चौथे कालका प्रारंभ काल था—इससे रानी सुप्रभाके एक हज़ार पुत्र उत्पन्न हुए। आचार्य कहते हैं—

तस्यां तन्नाथवंशाग्रगण्यस्येवांशवो रवेः।
प्राच्यां दीप्तयास्तदिक् चक्राः सहस्रमभुवन्सुताः॥१३

भाव यह है कि जिस तरह पूर्व दिशामें सूर्यके द्वारा एक हजार किरणें प्रगट होजाती हैं इस तरह नाथवंशमें मुख्य राजा अकंपनसे रानी सुप्रभाके एक सहश्र पुत्र उत्पन्न हुए।

इन पुत्रोंके नाम हेमांगद, सुकेतुश्री, सुकांत आदि थे। किसी कुटुम्बकी शोभा भाई बहनोंके विना नहीं होती। राजा

अकंपन पुण्यवान थे। उनके सुप्रभा रानीसे जैसे १००० पुत्र हुए वैसे दो बड़ी गुणवती कन्याएं भी जन्मीं, जिनमें बड़ीका नाम **सुलोचना** और छोटीका नाम लक्ष्मीमती था। आचार्य कहते हैं:—

हिमवत्पद्मयोर्गंगा सिन्धू इव ततस्तयोः।
सुते सुलोचनालक्ष्मी मती चास्तां सुलक्षणे॥१३९

भाव यह है जैसे हिमवान पर्वत और पद्मकुंडसे महागंगा और महा सिंधु नदियें निकलती हैं इसी तरह इनके सुन्दर शुभ लक्षणोंको धरनेवाली सुलोचना और लक्ष्मीमती नामकी कन्याएं प्रगट हुईं।

इस तरह राजा अकंपन पुत्र पुत्रियोंसे अलंकृत एक विस्तीर्ण वृक्षके समान शोभता था जिसकी छायामें अनेक जन शांति लाभ करते थे, जिसका सुयशरूपी सुगंध चहुंदिश व्याप्त था जिसकी सुन्दरता और गंभीरता एक आदर्शरूप थी—भरत चक्रवर्ती भी जिसके दर्शनसे तृप्ति लाभ करते थे। इस तरह नाथवंशका तिलक अनाथोंका नाथ होता हुआ प्रजाकी सेवा और धर्म पालनसे ही अपने जीवनको सफल मानता था।

द्वितीय अध्याय।

सुलोचनाकी कुमारी अवस्था।

यह सुलोचना वास्तवमें सुलोचना थी। इसके चक्षु मृगीके नयनोंको जीत चुके थे, इसीसे इसका नाम सुलोचना प्रसिद्ध था। समचतुरस्रसंस्थाननामा नाम कर्मके उदयसे केवल लोचन ही दर्शनीय न थे किन्तु सर्व अंग उपंग सांचेमें ढला हुआ यथायोग्य सुन्दरतासे उमड़ रहा था। बाल वय होनेपर भी इसका दर्शन नरनारियोंको प्रिय था। इसके मस्तकके केश अति चिक्कन, कृष्ण और सूक्ष्म थे मानों कृष्ण रंगसे रंजित रेशमके ही बने हुए हैं। इसके सरल और स्वच्छ आत्मामें कोई घोर पापमल न टिककर जो कुछ था सो केशोंके मिससे मस्तकपर आ गया था। और उस मलने यही ठीक समझा था कि अपनी काली प्रभासे ही इस पुण्यवान व्यक्तिकी शोभा बढ़ानेमें मदद करूं। चंद्र समान प्रकाशित मुखके ऊपर मस्तकपर लटकते हुए बाल काली घटाएं जैसे पूर्ण चंद्रको शोभित करें ऐसे मुखकी शोभाको परम रमणीक कर रहे थे। पूर्ण चंद्रमें कुछ कलंक दिखता है परंतु इसके निर्मल दर्पण सम मुखमें कोई कलंक न था। मस्तककी रचना सिद्धशिलाके आकारको याद दिलाती थी। दोनों कृष्ण भौंहें कमानके समान तनी हुई चक्षुओंके ऊपर मानों उनकी रक्षाकर रही थीं, कि कहीं इनको

किसीकी नजर न लग जावे क्योंकि शरीरमें प्रफुल्लित चक्षुओंसे ही शरीरकी शोभा और मुख्य कर्त्तव्यता होती है। दोनों कर्ण अपनी सुंदरतासे पूर्ण दोनों ओर बैठे हुए श्रुतके वचनोंको ग्रहण करके मुखको प्रफुल्लित करते रहते थे। कदाचित् श्रत विरुद्ध अशुभ वचन भी सुनते तो उनको अनसुनासा करके मुखकी शोभाको विकृतिसे बचाते थे। दोनों नेत्र मीनके समान चपल थे। कहीं परस्पर भिड़कर हानि न करें इसलिये शुक समान नासिकाने अपना अड्डा मध्यमें जमा दिया था और अपना कर्तव्य यह नियत किया था कि कोई भी पदार्थ जो शरीरके भीतर मुखद्वारा लिया जाय उसकी पहले परीक्षा कर ली जाय कि वह शरीर और आत्माको हानिकारक तो नहीं है। कपोलोंमें गंभीरता, स्वच्छता व चमक इतनी तीव्र थी कि प्रायः जनताको सुवर्ण मंडित चौखटमें दर्पणका भ्रम होजाता था। मुखके ओष्ठ अति सूक्ष्म रक्त कमल पत्तोंके समान अपनी रक्ततासे मूंगेकी ललाईको जीतते थे, मुखके खुलते ही भीतर पवित्र श्वेत दांतोंकी पंक्ति अपनी चमकसे यकायक चन्द्रकिरणके समान झलक दिखला देती थी, मुखके भीतर अति सुडौल और रक्तवर्णवाली जिह्वाने अपना यह काम नियत किया था कि जो कोई वस्तु मुखसे शरीरमें भेजना चाहे उसके स्वादकी जांच करली जावे। यदि उस वस्तुका स्वाद अस्वाभाविक व शरीर तथा आत्माको हानिकारक हो तो उसे बाहर ही निकाल दिया जाय। इस तरह इन सम्पूर्ण उत्तमांगके अवयव बड़े ही शोभनीक और उपयोगी सुलोचनाके पुण्यरूपी नाम कर्मने रचकर बना दिये थे। पांचों रूप-

र्शादि इन्द्रियोंने इस उत्तम भागको घेर लिया था। केवल स्पर्श इंद्रियको ही अपनी लाज रखनेके लिये अन्य अनुत्तम अङ्गोंमें भी व्याप्त होना पड़ा था क्योंकि वह सबसे बड़ी थी। जो बड़ी होती है उसीको अपने परिवारकी मान मर्यादा देखनी पड़ती है। हस्त और पग कमल पुष्प समान शोभते थे मानो लक्ष्मीदेवी कमलोंको लिये हुए भगवत् पूजा करनेके लिये उत्सुक होरही है। अन्य सर्व शरीरके अंग अपनी मनोहरतामें अनुपम थे और शुभ, शुभग और आदेय नामकर्मके कार्यको व्यक्त कर रहे थे। मानो उसके शरीराकार होकर शुभ नामकर्मकी प्रकृतियोंने अपना प्रभाव दिखला दिया था और यह प्रगट किया था कि जो कोई ऐसा शुभ निरोगी शरीर प्राप्त करना चाहे उसे शुभ नामकर्मके लिये मन वचनकायकी सरलता व शांतता रखना चाहिये तथा वितंडावाद और झगड़े टंटेसे बचना चाहिये।

यह सुलोचना शरीरमें शोभनीक होनेके साथ मति और श्रुतज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे बुद्धि, धारणा, तर्क, अनुमान और शास्त्र तथा पदार्थके विचारमें अति निपुण थी। अति शिशु वयमें माता पिताने मुखसे ही बहुतसे जिनेन्द्र स्तोत्र, श्लोक व छंद कंठ करा दिये थे तथा अनेक महान् पुरुष और स्त्रियोंकी कथाओंसे उसके मनको महा उदार और गंभीर बना दिया था—मातपिताका अनुकरण शिशुगण किया करते हैं। अकंपन और सुप्रभा जैसे मातापिता जिसके हों उसके सुशील व सुशिक्षित होनेमें क्या संदेह होसक्ता है—जो सदा सत्यवादी, प्रियवादी, ·णी और सभ्यतासे व्यवहार करके संतानोंपर अपने सद्-

व्यवहारकी मुद्रा अंकित करते थे। वास्तवमें मातापिताओंको छोटे २ अबोल शिशुओंके सन्मुख कभी दुर्वचन न कहने व दुर्व्यवहार न बताने चाहिये। छोटे २ बालक हरएक बातको ध्यानसे सुनते व हरेक कामको ध्यानसे देखते और बहुत जल्द अपनी धारणामें जमाकर उसीकी नकल करनेकी चेष्टा किया करते हैं। बहुतसे बालक मातापिताके अयोग्य व्यवहाररूपी शिक्षासे बिगड़ जाते हैं—उनकी बोली असभ्य होजाती है, वे डरपोक कायर होजाते हैं तथा उनमें खाने पीनें खेलने तथा मारने पीटनेकी बुरी आदतें पड़ जाती हैं—जिनसे उनको जन्मभर जगतमें बदनाम होना पड़ता है। यह सुलोचना ५-६ वर्षके अनुमान हुई योग्य धर्मात्मा पंडिताके सुपुर्द विद्याभ्यासके लिये की गई। थोड़े ही कालमें इसने देशभाषा, गणित, व्याकरण, साहित्य, छंद, चित्रकला, शिल्प, गृहप्रबन्ध, शिशुपालन तथा धर्मशास्त्रोंमें अच्छी योग्यता प्राप्त करली थी। जिसके ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम विशेष होता है उसके लिये केवल एक थोड़ेसे निमित्त मिलनेसे ही विद्या स्फुरायमान होजाती है जैसे दियासलाईके घिसनेसे ही दीपकका प्रकाश होजाता है। जब यह गृहस्थ स्त्रीके योग्य विद्याओंमें निपुण होगई तब इसकी विद्या प्राप्ति योग्य वय अधिक जानकर अन्य आवश्यक विद्याओंमें निपुण कराया गया जैसे गान, नृत्य, पुरुष परीक्षा, रत्न परीक्षा, अश्व परीक्षा, वाहनारोहण, नदी तरण, शस्त्र विद्या, आदि। शास्त्रकारोंने जो ६४ कलाओंका ज्ञान स्त्रियोंके लिये आवश्यक बताया है उनका ज्ञान यह प्राप्त करके विद्याकी खानि होगई।

सुन्दरतामें रति, शोभामें लक्ष्मी, विद्यामें सरस्वती, धैर्यमें धृति, सुयशमें कीर्ति, लज्जामें ह्री होकर रति, लक्ष्मी, धृति, कीर्ति, ह्री आदि देवियोंको मात्सर्यका कारण होगई । अनेक देवियोंके गुण एक सुलोचनामें ही जागृत होगए। वास्तवमें पुण्यकर्मका अचिन्त्य प्रभाव है ।

यह सुलोचना शनैः२ चंद्रकलाकी भांति वृद्धिको प्राप्त हुई । आयुके साथ इसके गुण भी बढ़ते गए । आचार्य कहते हैं—

सुलोचनाऽसौ बालेव लक्ष्मीः सर्वं मनोरमा ।
कलागुणैरभासिष्ट चंद्रिकेव प्रवर्द्धिता ॥ १३६ ॥

भावार्थ—यह सुलोचना कन्या बड़ी सुन्दर लक्ष्मीतुल्य थी तथा जैसे चंद्रकला बढ़े वैसे गुणोंमें वृद्धिको प्राप्त हुई ।

शनैर्बालेंदुरेखेव सा कलाभिरवर्द्धत ।
वृद्धास्तस्याः प्रवृद्धाया विधु भास्पर्धिनो गुणाः ॥

भावार्थ—धीरे २ चंद्र कलाके अनुसार वह अपनी कलाओंमें उन्नति करती गई । उस सुलोचनाकी वृद्धिके साथ उसके गुणोंने जो उन्नति की तथा उनमें जो निर्मलता व न घटनेकी योग्यता रही इससे चंद्र कलाको बड़ी ईर्षा पैदा हुई क्योंकि चंद्रकलामें कुछ मलीनता रहती तथा वह पूर्ण बढ़कर फिर घटने लगती है सो ये दोनों बातें इस सुलोचनामें न थीं—यह अपूर्व चंद्रमा थी । रूप, गुणमें अनुपम स्त्री होनेके साथ साथ यह धर्मके आचरणमें भी बड़ी श्रद्धालु और प्रमाद रहित थी—माता पिताने छोटी

वयसे ही नित्य श्री जिनेन्द्र भक्ति, जप, पाठ, शास्त्रस्वाध्याय, दान, व्रत, उपवास आदि धर्माचरणोंकी आदत डलवा दी थी। कारण यही है कि बाल और कुमार अवस्था कच्चे घटके समान होती हैं-उस कच्चे घटमें जैसी चित्र रचना करना चाहे की जासक्ती है वैसे इस प्रथम वयमें जो कुछ आचरण कराना चाहो वह कराया जासक्ता है तथा जैसे वह कच्चा घट जब पक्क जाता है तब वही चित्र रचना उसपर दीखती है वैसे ही कुमार वयके उल्लंघनपर युवावयमें वे ही आचरण दृढ़तासे पाए जाते हैं जिनका कुमार वय तक अभ्यास किया हो। जो लोग बालक बालिकाओंको शुरूसे धर्मशिक्षा व धर्माचरणमें नहीं लगाते हैं और उनको स्वच्छंदतासे लौकिक शिक्षा लेने देते व धर्ममें कुछ भी प्रेरणा नहीं करते हैं वे युवावयमें धर्मशून्य हों तो कोई आश्चर्य नहीं है। मातापिताका परम कर्तव्य है कि सन्तानको शुरूसे ही धर्माचरणमें दृढ़ करते जावें। जब बालक अबोल होता है तब हीसे उसके ऊपर धर्मकी छाप उन संस्कारोंसे दीजाती है जो गर्भाधानादि क्रियाओंसे गृहस्थको करना चाहिये। जन्म संस्कार, नाम संस्कार, वर्षगांठ संस्कार, अन्नप्रासन संस्कार, मुन्डन संस्कार, विद्यारंभ संस्कार आदिमें मंत्र सहित होम किया जाता है व श्री जिनेन्द्रके गुणोंका स्तवन तथा पूजन बालकके सामने किया जाता है-इन सबका बालककी बुद्धिपर बहुत बड़ा असर पड़ता है। जो माता पिता बालकोंकी कोमल बुद्धिपर धर्मज्ञान तथा धर्माचरणकी छाप नहीं डालते वे वास्तवमें उनके शत्रु हैं। उनका अमूल्य मनुष्य जीवन धर्मशून्य बीतता है। वे स्वात्मानंदके शांति-

मय सुखसे वञ्चित रहते हैं और शरीर त्याग करके अशुभगतिमें जाकर आत्माको अवनतिके गर्तमें पटक देते हैं।

सुलोचनाके मातापिता बड़े विवेकी श्रीऋषभदेव भगवानके भक्त थे। उनकी शिक्षाके अनुसार गृही धर्म पालना उनका हार्दिक भाव था। इस कारण सुलोचना धर्माचरणमें बहुत दृढ़ हो गई और नित्य ही श्री जिनेन्द्रका पूजन, सामायिक, स्वाध्याय तथा पात्रोंको दान करने लग गई। आचार्य कहते हैं:-

कारयंती जिनेन्द्रार्चाश्चित्रामणिमयीर्बहूः।
तासां हिरणमयान्येव विश्वोपकरणान्यपि ॥१७३॥
तत्प्रतिष्ठाभिषेकान्ते महापूजा प्रकुर्वती।
मुहुस्तुतिभिरथ्याभिः स्तुवती भक्तितोऽर्हतां॥१७४
ददती पात्रदानानि मानयंती महामुनीन्।
शृण्वती धर्ममाकर्ण्य भावयंती मुहुर्मुहुः॥ १७५॥
आप्तागमपदार्थांश्च प्राप्तसम्यक्तशुद्धिका॥ १७६॥

भावार्थ यह है कि उसने विचित्र रत्नमई बहुतसी जिनेन्द्र प्रतिमाओंको रचवा करके व सुवर्णमई अनेक पूजाके उपकरण बनवाके उनकी प्रतिष्ठा कराई व महा अभिषेक होनेके पीछे उसने स्वयं महापूजा की थी। इस तरह नित्य ही श्री जिनेन्द्रकी पूजा करती थी व अर्थ पूर्ण स्तुतियोंसे वारम्वार श्री अर्हंत भगवानकी भक्तिसे स्तुति करती थी। महा मुनियोंका आदर करती तथा पात्रदान करती रहती थी। उनसे धर्मके स्वरूपको सुनकर वार-

वार आप्त आगम व पदार्थोंके स्वरूपकी भावना करती रहती थी इस तरह उसने अपने सम्यक्‌दर्शनको शुद्धकरलिया था।

पाठकगण ध्यानमें लेवें कि यदि कन्याएं कुमार अवस्थामें सच्चा शास्त्रज्ञान पावें और उनको दृढ़ श्रद्धान सच्चे देव, सच्चे शास्त्र, व सच्चे सात तत्वोंपर होजावे और उनका व्यवहार सम्यदर्शन निर्मल होजावे तब क्या कभी यह संभव है कि वे कन्याएं गृहस्थमें जाकर कभी भी मिथ्यात्वका सेवन करें? वे प्राणोंके जानेपर भी कुदेव, कुगुरु, कुधर्मकी भक्ति नहीं करेंगी। इसलिये जैसे सुलोचना सम्यक्तमें व आचरणमें दृढ़ थी उसी तरह कन्याओंको सुशिक्षिता बनाकर, उनको तत्त्वज्ञान सिखाकर उनके भावसे अज्ञान, संशय और विपरीतताकी कालिमाको निकाल देना चाहिये और उन्हें नित्य दर्शन पूजन स्वाध्याय जप पाठ दानादि धर्मकार्योंमें अभ्यासी बनाना चाहिये। ऐसी ही धर्मात्मा कन्याएं आदर्शगृहपत्नी होनेके योग्य हो तथा आदर्श पतिव्रता धर्मको पालकर इस लोकको अच्छी तरह निभाकर परलोकके लिये शुभ कर्म संचयकर लेजाती हैं।

तृतीय अध्याय।

सुलोचनाका स्वयंवर।

सुलोचना अपनी विद्या, कला, सुन्दरता, धर्माचरण, विनय, मिष्ट वचन आदि उत्तम गुणोंमें दिनपर दिन बढ़ती हुई माता पिताको अपनी सच्चरित्र व सद्व्यवहारसे आनंदित करती थी। यह सुलोचना अपनी सखियोंको लेकर उद्यानमें जाती और वहां वृक्षोंसे स्पर्शित मंद सुगंध पवनको लेती हुई सैर करती, कभी गेंदक्रीड़ाकरके व्यायाम करती, कभी पुष्पोंके हार बना एक दूसरेको देती, कभी पुष्पोंके नाना प्रकारके आभूषण बनाकर पहरती, कभी उद्यानके जिन मंदिरजीमें पूजन करती, कभी परस्पर गाबजाकर नृत्य करती, कभी नाना प्रकार काव्य व छंदोंके द्वारा परस्पर चतुराईको प्रदर्शित करती, कभी घोड़ोंपर चढ़कर परस्पर दौड लगाकर आगे निकलती, इस तरह नाना प्रकार शरीर व मनको प्रसन्न करनेवाले व किसी प्रकारका विकार न पैदा करनेवाले कौतुकोंसे अपने कुमारकालको पुण्योदयके वश बिताती हुई यौवनावस्थामें पहुंच गई। एक वर्षमें तीन दफे अर्थात् कार्तिक, फाल्गुण और आषाढ़ मासके अंतके आठ दिन अष्टान्हिका पर्वके कहाते हैं—उन दिनोंमें विशेष पूजन व व्रतादि करके निजानन्द रसको पान करती थी। आचार्य कहते हैं—

अथ फाल्गुननंदीश्वरेऽसौ भक्त्या जिनेशिना ॥१७६
विधायाष्टाह्निकां पूजामभ्यर्च्यार्च्यां यथाविधि।
कृतोपवासा तन्वंगी शेषान् दातुमुपागता ॥१७७॥
नृपं सिंहासनासीनं सोऽभ्युत्थाय कृतांजलिः।
तद्दत्त शेषानादाय निधाय शिरसि स्वयं॥ १७८ ॥
उपवासपरिश्रांता पुत्रिके त्वं प्रयाहि ते।
शरणं पारणाकाल इति कन्यां विसर्जयत् ॥ १७९ ॥
तां विलोक्य महीपालो बालामापूर्णयौवनां।
निर्विकारां सचिंतः सन् तस्याः परिणयोत्सवे ॥१८०

भाव यह है कि एक दफे फाल्गुन मासके नंदीश्वर द्वीपकी पूजाके आठ दिन आगए। तब इस सुलोचनाने बड़ी भक्तिसे श्री जिनेन्द्र भगवानकी अष्टान्हिकपूजा की और विधिके अनुसार पूजन समाप्त करके पूजाके शेषाक्षत अपने पिता राजा अकंपनको भेट देनेको वह राजसभामें पधारी। उसने उपवास किये थे इससे उसका शरीर दुर्बल दीखता था। इससे ऐसा झलकता है कि उसने उत्कृष्ट विधि की थी अर्थात् आठ दिन उपवास करके पारणाके दिन वह शेषाक्षत लेकर भेट देनेको सभामें गई थी। राजा अकंपन सिंहासनपर विराजमान थे। पूजाके शेषाक्षत रकाबीमें लिये हुए सुलोचनाको आते देख उन पूज्य शेषाक्षतोंका विनय करनेके लिये वे सिंहासनसे उठे और हाथ जोड़कर सुलोचनासे दिये हुए शेषाक्षतोंको लेकर स्वयं उन्हें अपने मस्तकपर

रख लिया। इससे ऐसा मालूम होता है कि वे मंत्र सहित चढ़े हुए अक्षत न थे किन्तु पूजा करनेके पीछे कुछ अक्षत बचा लिये जाते थे वे ही शेषाक्षत कहलाते थे, उनको आशीर्वादरूपसे परस्पर देनेका रिवाज था जिसमें उस शेषको देखकर श्री जिनेन्द्रकी ओर भक्तिभाव पैदा हो जावे और भावोंकी निर्मलता होनेसे धर्मलाभ होजावे। सुलोचनाको उपवाससे थकी हुई देखकर राजा अकंपनने कहा कि हे पुत्री! तू अब महलोंमें जा, तेरे पारणा कर-_____ है। ऐसा कहकर कन्याको सभासे विदा कर दिया। उस समय राजा अकंपनने देखा कि कन्या पूर्ण यौवनवती है तथापि इसके भावोंमें कोई कामका विकार नहीं है—परन्तु अपना यह कर्तव्य विचारकर कि जब कन्या युवावयमें आजावे तब उसको परणानेका अवश्य उपाय करना चाहिये, राजा अकंपन उसके विवाहोत्सव करनेकी चिंतामें पड़ गया।

यहां हमारे पाठकोंको यह बात ध्यानमें ले लेनी चाहिये कि राजा अकंपनने उस समय तक कन्याके लिये वर ढूंढनेका भी विचार न किया, जबतक वह पूर्ण युवती न होगई—जबतक गर्भ धारणकर योग्य संतान उत्पत्तिके योग्य न होगई। वास्तवमें यह बड़ा अन्याय है जो भारतवर्षमें बहुतसी जातियां कन्याओंको विना शारीरिक, मानसिक, धार्मिक, लौकिक उन्नतिमें दक्ष बनाए उनकी सगाई व उनका विवाह बहुत छोटी वयमें कर देते हैं—उनमें बालकपन तक रहता है। चाहिये तो यह कि जब कुमारकाल भी बीत जावे तब ही उनकी सगाई व विवाह क्रियाका विचार करना चाहिये, इस नियमको ध्यानमें न लेनेके कारण ही भारतमें हजारों

बालविधवाएं अनाथपनेका जीवन काट रही हैं और बड़े कष्टसे जीवनके दिन पूरे कर रही हैं। यदि गर्भधारण योग्य वयमें कन्याका विवाह प्रौढ युवान पुरुषके साथ किया जाय जैसा कि प्राचीन कालमें नियम था तो संतान रहित बहुत कम विधवाएं होवें और समाजमें संख्याकी घटी भी न होवे।

सुलोचना अब सब तरह युवान वयमें है, और अपनी हर-प्रकारकी उन्नति कर चुकी है इस तरह अब इसको किसी योग्य पुरुषको विवाहना चाहिये, यह संकल्पकर राजा राजसभासे उठकर अलग एकांत स्थानमें गए और वहां सम्मति करनेके लिये अपने सुयोग्य चार मंत्रियोंको बुलाया, जिनके नाम हैं—श्रुतार्थ, सिद्धार्थ, सर्वार्थ और सुमति। इन मंत्रियोंसे राजाने अपनी चिंताका वर्णन किया और सुलोचनाके लिये कौनसा वर होना चाहिये इसकी सम्मति मांगी। वास्तवमें राजाओंका यही धर्म है कि जिस बातके करनेका विचार हो उसकी सम्मति मंत्रियोंसे अवश्य कर लेवें। चार मंत्रियोंकी सम्मति वास्तवमें परस्पर विचार होते होते अंतमें उत्तम बैठ जाती है।

श्रुतार्थ मंत्रीने तो शीघ्र ही उस समयके प्रसिद्ध चक्रवर्ती शासक भरतके पुत्र अर्ककीर्तिका नाम प्रकट किया और कहा कि वरमें जितने गुण होने चाहिये वे सब अर्ककीर्तिमें मौजूद हैं, वह सूर्यके समान तेजस्वी है। आचार्य कहते हैं:—

कुलं रूपं वयो विद्या वृत्तं श्रीः पौरुषादिकं।
यद्वरेषु समन्वेष्यं सर्वं तत्तत्र पिंडितं ॥ १८६ ॥

वह मंत्री कहता है कि कन्याओंके लिये जब किसी वरकी तलास की जावे तब उसमें और गुणोंके सिवाय इन सात गुणोंको तो अवश्य ढूंढ़ना चाहिये चाहिये अर्थात् कुल उत्तम, रूप उत्तम, अवस्था योग्य, विद्यामें प्रवीणता, चारित्र उत्तम, लक्ष्मी या शोभा योग्य तथा पुरुषार्थकी कुशलता-कुल, रूप, वय, विद्या, चारित्र, श्री और पौरूष आदिका विचार करके जिनमें ये सब योग्य पाए जावें वही कन्याके लिये उत्तम वर होसक्ता है। मंत्री कहता है कि मैंने अच्छी तरह विचार लिया है कि यह सब गुण इस अर्ककीर्तिमें एक साथ पाए जाते हैं, इससे हे राजन् बिना और अधिक विचार किये आप सुलोचना अर्ककीर्तिको ही प्रदान करें। तब सिद्धार्थ और सर्वार्थ मंत्रियोंने और बहुतसे क्षत्री राजपुत्रोंके नाम बताए जो वर योग्य, गुणोंमें अर्ककीर्तिसे कम न थे। राजा अंकपन अपने मनमें यह निर्णय न कर सका कि किसको पसंद किया जाय। राजाको दीर्घ विचारमें रख चौथा सुमती मंत्री कहता है-कि हे महाराज! आपकी कन्या सब तरह योग्य है, आप स्वयंवरका विधान कीजिये। सब राजपुत्रोंको बुलाइये। यह कन्या स्वयं परीक्षा करके जिसको योग्य समझेगी उसके गलेमें वरमाला डालेगी तथा वही वर इस कन्याके जीवनके लिये सुखदाई होगा। आचार्य कहते हैं:—

दृष्टः सम्यगुपायोऽयं मयाऽत्रैकोऽस्ति निर्मलः।
श्रुतः पूर्वपुराणेषु स्वयंवरविधिर्वरः॥ १९६॥

भाव यह है कि उस समय सुमति मंत्रीने कहा कि इस

समय मुझे यही एक ठीक उपाय दिखता है जिसमें कोई विरोध भी नहीं होसक्ता व जिसका होना पूर्व कालमें पुराणोंसे सिद्ध है वह यह है कि स्वयंवरकी विधि की जावे। स्वयंवरका होना कर्मभूमिमें सदा हीसे प्रचलित है। यद्यपि इस अवसर्पिणी कालमें अबतक यहां यह विधि किसीने नहीं की है तथापि यह कोई नई बात नहीं है। विदेह क्षेत्रमें तो इसका सदा ही रिवाज रहता है तथा भरतक्षेत्रमें पहली उत्सर्पिणियों व अवसर्पिणियोंमें ऐसा पुनः पुनः होता रहा है तथा इस विधिसे किसीको कुछ कहने सुननेका भी अवसर नहीं रहता। चतुर यौवनवती कन्या अपनी बुद्धिबलसे अपने सर्व जीवनमें साथ देनेवाले साथीको इच्छानुसार तलाश कर लेती है। वास्तवमें विवाह सम्बन्धमें मुख्य संयोग कन्या और वरका होता है। वे दोनों पति पत्नी भावको प्राप्त होते हैं। उनमें परस्पर एक दूसरेपर न्योछावर हो जानेवाला प्रेमभाव होना चाहिये। यदि पति पत्नीमें घृणा है व अप्रेम है तो दोनोंका गृहवास दोनोंको ही दुखदाई है व वह घर कंटकभरी शय्याके समान है। इसलिये यह बहुत आवश्यक है कि पतिके पसन्द पत्नी और पत्नीके पसन्द पति हो। जिनका स्वयंवर नहीं होता उनके लिये यद्यपि माता पिता वर ढूंढते हैं तथापि कन्यासे सूचनाकर देते हैं जिससे यह प्रगट हो जावे कि वह इस सम्बन्धसे अप्रसन्न तो नहीं है। इस तरह वरके माता पिता भी वरको यह सूचित करा देते हैं कि अमुक कन्या तुम्हारे लिये ठीक की गई है जिससे उसकी भी यदि अप्रसन्नता हो तो मालूम हो जावे। यदि माता पिता किसीकी भी अप्रसन्नता देखते

हैं तो उस सम्बन्धको कदापि नहीं करते। यही उचित भी है, क्योंकि जिनको परस्पर रहकर जीवन बताना है उनका परस्पर चित्त सम्बन्ध तो होना चाहिये। यदि चित्तका सम्बन्ध न हुआ और केवल शरीरका सम्बन्ध जोड़ दिया गया तो क्या उसको यथार्थ सम्बन्ध कहा जा सक्ता है? कदापि नहीं। प्राचीन कालमें ऐसा कदापि नहीं होता था। प्रौढ़ युवावयमें विवाह होते थे जिससे पति पत्नी अपने २ धर्म व कर्तव्यको समझकर ही सम्बन्ध करते थे—आजकलके समान नहीं होता था, कि माता पिता अपने स्वार्थवश कन्याको न बताकर उसे चाहे जैसे छोटे, बेमेल और वृद्ध पुरुषके साथ विवाह देते हैं अथवा चाहे जैसी कन्या मातापिता अपने पुत्रके लिये ढूंढ़ लेते हैं। पुत्र विचारा अनजान रहता है या तो वह अल्प वयमें समझने योग्य नहीं होता और यदि समझने योग्य होता है तो उससे कुछ भी सम्मति नहीं ली जाती। वास्तवमें मातापिता केवल दलालके समान हैं, मुख्य सौदा तो वर वधूका है। उन दोनोंको इसीलिये परस्पर एक दूसरेको समझ लेना चाहिये तब हाथसे हाथ मिलाकर पाणि-ग्रहण करना चाहिये। इस चित्तके विवाहके विना केवल शारीरिक बलात् विवाहके कारण भारतमें करोड़ों कुटुम्ब परस्पर कलहका जीवन बिताते हैं इतना ही नहीं चित्तके मेल न रहनेसे पुरुष अन्य स्त्रियोंसे प्रेम करता है तब स्त्री भी छिपकर पर पुरुषोंसे प्रेम बांध लेती है इस तरह यहां अयोग्य व्यवहार होजाते हैं— बहुधा स्त्रियोंको गर्भ तो किसी अन्य पुरुषसे रहता है और वह संतान विवाहिता पतिकी समझी जाती है। वेश्या व परस्त्रीके

व्यसन इसी विवाहके अयोग्य संबंधसे विशेष प्रचलित होजाते हैं। जब पतिका मन पत्नीमें व पत्नीका मन पतिमें प्रेमालु रहेगा तो किसीको भी परस्त्री व परपुरुषकी चाह नहीं रहेगी इससे यह बहुत उचित है कि बर वधू दोनों प्रौढ़ वयके एक दूसरेको समझनेवाले व पसंद करनेवाले हों। इस पुस्तकको पढ़नेवाले कुमारे बालक व कुमारी बालिकाओंको यह बात अच्छी तरह ध्यानमें ले लेनी चाहिये कि जब तक वे युवानपनेके निकट न पहुंचें, अपना विवाह न करावें तथा विवाह करनेके पहले परस्पर अपने साथीको समझ लें जिससे चित्तका मेल होजावे। यदि मातापिता विरु वर्तन करें तो उस संबंधको आप जिसतरह बने दूर करावें। यदि कुमारे व कुमारी अपने हितकी तरफ देखें तो उनके माता पिताओंके स्वार्थवश जो उनका अहित होता है वह न होगा तथा बालविवाह, अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह व कन्याविक्रय जिनका आजकल बहुत जातियोंमें बहुत प्रचार है बिलकुल लुप्त हो जावेंगे जिससे समाजकी दशा बहुत कुछ सुधर जावेगी।

सुमति मंत्रीकी इस सम्मतिको सर्वहीने पसंद किया, महाराज अकंपनकी पूरी अनुमति बैठ गई। उसी समयसे स्वयंवरके-लिये तैयारियां होने लगीं। राजा अंकपनने भरतक्षेत्रके सर्व राजाओंके पास अपने हस्ताक्षरी पत्र दूतोंके साथ भेजे कि वे सुलोचनाके स्वयंवर विधानमें अपने २ राजकुमारोंको भेजें। इधर स्वयंवर मंडप आदिकी रचना होने लगी। इसी समय चित्रांगद नामा देवको स्वर्गमें अपने अवधिज्ञानसे यह मालूम हुआ कि उनका पूर्वजन्मका भाई महाराज अकंपन अपनी कन्याके वर

ढूंढनेके वास्ते स्वयंवर रचना चाहते हैं। वह देव इस विधिके कराने व इसे देखनेके लिये महाराज अकंपनके पास आया और आज्ञा मांगकर स्वयंवर मंडप बनानेके कार्यमें सहायता करने लगा।

उस देवने नगरके बाहर समीप ही उत्तर दिशामें यह स्वयंवरका मंडप रचवाया। मध्यमें एक बहुत शांत और विशाल व रमणीक **सर्वतोभद्र** नामका राजभवन बनवाया जिसका मुख पूर्व दिशाको रक्खा गया, उसके भीतर ही विवाहका मंडप बनाया गया जहां आठ मंगल द्रव्य स्थापित किये गए। यह राजभवन कई मंजिलका बहुत ऊंचा बनाया गया। इसके चारों ओर एक बड़ा कोट देकर उस कोटके भीतर राजकुमारोंके ठहरने योग्य स्थान चारों तरफ चौकोर बनाए गए। चारों तरफ बड़े २ द्वार रचे गए जिनमें रत्न, तोरण व ध्वजा बांधी गईं व ऊंचा शिखर बनाया गया। राजकुमारोंके वास योग्य भवनोंमें उनके योग्य सर्व भोगोपभोगकी सामग्री यथास्थान चुन दी गई। सर्वतोभद्र महलके आगे बहुत बड़ा मैदान था उसमें स्वयंवर मंडपका भवन बहुत विशाल रचा गया जिसमें राजकुमारोंके विराजनेके स्थान अलग और दर्शकोंके बैठनेके स्थान अलग रचे गए देव द्वारा निर्मापण कराए हुए स्वयंवर भवनादिकी रचना एक अद्भुत दर्शन योग्य ही होसक्ती है।

वसंत ऋतुका समय था। नियत मितीके कुछ पहलेसे राजकुमार अपनी थोड़ी बहुत सेनाके साथ आने लगे। उन सबका राजा अकंपनने बहुत सन्मान किया और अच्छी तरह स्वागत करके ठहराया। स्वयंवरके कोटके भीतर राजकुमार ठहरे और

सेनाने बाहर डेरा किये । भरत चक्रवर्तीके पुत्र राजकुमार अर्ककीर्ति भी आए जिनका खास रीतिसे आदर किया गया । हस्तानापुरसे चंद्रवंशी राजा सोमप्रभ और रानी लक्ष्मीमतीके पुत्र जयकुमार भी आए इनका नाम मेघेश्वर भी प्रसिद्ध था । यह भरत चक्रवर्तीके सेनापति थे, चक्रवर्तीको छः खंड पृथ्वीका दिग्विजय करानेमें मेघेश्वरका बड़ा भारी पुरुषार्थ था । जयकुमारके चाचा राजा श्रेयांश थे जिन्होंने श्री ऋषभदेव भगवानको प्रथम पारणा कराया । सोमप्रभ और श्रेयांश दोनों मोक्षगामी थे-मोक्ष पधारे। जयकुमार बड़ा प्रतापशाली और समचतुरसंस्थानधारी मनोहर युवान वीर राजकुमार था । इसका भी राजा अकंपनने बहुत आदर किया ।

इतनेमें स्वयंवरका दिन आगया । उस दिन चारों ओर गाजेबाजे सवेरेसे ही बजने लगे । सर्व राजकुमार खूब अच्छी तरह स्नानादिकर व श्री जिनेन्द्रकी पूजा व नित्य नियमकर श्रृंगारित हो मंडपमें जानेकी तय्यारीमें लगे। उधर राजा अकंपनने इस परम मंगलीक कार्यकी आदिमें भले प्रकार पूजा विधान कराया व स्वयं भी पूजा करके निर्मल चित्त हो स्वयंवरके प्रबंधमें लग गया ।

राजमहलकी कुछ विवाह विधिकी ज्ञाता सौभाग्यवती स्त्रियोंने स्वयं श्री जिनेन्द्रकी पूजा की और गाजबाजेके साथ रानी सुप्रभाके महलमें आईं और कन्या सुलोचनाको विवाह मंडपमें लेगईं। यह विवाह मंडप भी रानी सुप्रभाके महलमें बनाया जिसके सुवर्णमई ४ स्तंभ थे व मोतियोंकी मालाएं लटकरहीथीं, इस

मंडपमें लाकर सुलोचनाको पूर्व दिशाकी ओर मुख करके बिठाया और उसका सुगंधित पदार्थोंसे अभिषेक किया गया व योग्य वस्त्राभूषणोंसे सजाया गया। सुलोचना स्वभावसे ही सुंदर थी तौ भी वस्त्रों और गहनोंने उसकी शोभाको और भी सुहावना बना दिया था। श्रृंगारित सुलोचनाको लेकर वे स्त्रियां महलके भीतर जो नित्य मनोहर नामका चैत्यालय था वहां लेगईं, सुलोचनासे विधिपूर्वक श्री अरहंतकी पूजा कराई, शेषाक्षत आशीर्वाद रूप सुलोचनाके मस्तक पर रक्खे और इस चैत्यालयमें ही सुलोचना धर्मभावना करती हुई उन स्त्रियोंकी आज्ञासे उनहीके साथ ठहरी रही। आचार्य कहते हैं—

कृतमंगलनेपथ्यां नीत्वा नित्यमनोहरं।
पूजयित्वाऽर्हतो भक्त्या सर्वकल्याणकारिणः ६३
सिद्धशेषं समादाय क्षिप्त्वा शिरसि साशिषं।
स्थिताः प्रतीक्ष्य सल्लग्नं तत्रावृत्त्या हितादरं॥२६४॥

भाव यह है कि सर्व कल्याणके कर्ता श्री अरहंत भगवानकी पूजा कराकर और शेषाक्षत आशीर्वादरूप कन्याके मस्तकपर धारण कर योग्य लग्नके समयकी प्रतीक्षामें वहीं सब ठहरीं। उधर स्वयंवरके खास मंडपमें आनेका समय होने लगा। राजकुमार सबतरह अपनी सुंदरता और प्रवीणताको रचकर मंडपमें पधारे और जो २ आसन जिस २के लिये योग्य व नियत था वहां विराजमान हुए। विद्याधरोंके बैठनेके स्थान भूमिगोचरियोंसे एक

तरफ कुछ उंचाई पर थे। जब सर्व मंडप भिन्न २ रंगके वस्त्र अलंकारोंसे सज्जित राजकुमारोंसे शोभित होगया और उनके मुकुटोंमें जड़ित रत्नोंकी प्रभाने चारों ओर अपने भिन्न २ वर्णके प्रकाशको फैलानेका और अपने विरोधी वर्णके दूर भगानेका प्रयत्न करना शुरू किया और मंडपने अपने गंभीर गौरवके कारण उन प्रभाओंके किसी वर्णको मंडपसे बाहर नहीं जाने दिया, तब उस मंडपमें विचित्र रंगकी किरणोंकी बहार यत्रतत्र दर्शकको आती हुई कभी इन्द्र धनुषका भ्रम उत्पन्न कर देती थी। यत्रतत्र सुवर्ण, रत्न, मोती इन्हींकी शोभा होरही थी जिससे यह माल्म होता था कि यह मंडप साक्षात रत्नाकर है। समुद्र भी रत्नाकर कहलाता है परंतु उसके गर्भमें रत्न होते हैं वह प्रगट अपनी शोभाको नहीं दिखा सक्ता, किन्तु यह मंडप साक्षात् प्रगट रत्नोंका भंडार था। जब सर्व अपने २ स्थान पर आसीन और उपस्थित होगए तब यकायक बहुतसे स्वयोग्य परिकरके साथ राजा अकंपन रानी सुप्रभा सहित इन्द्र इन्द्राणीकी भांति अपने चमत्कारको विस्तारते और राजकुमारोंकी सुलोचनाके वरनेकी प्रतीक्षाको दूर करते स्वयंवर मंडपमें पधारे। पश्चात महेन्द्रदत्ता नामा कंचुकी रथसहित मनोहर चैत्यालयमें गई और सुलोचनाको रथमें बिठाया, उसी समय सुलोचनाके बड़े भाई हेमांगद हाथी घोडे रथ पयादोंकी सेनाको लेकर आए और रथको सेनाके मध्यमें किया। गाजेबाजेके साथ सुलोचनाका कूच स्वयंवर मंडपकी तरफ होरहा है। प्रजाके लोग मार्गमें देख देखकर बड़े कौतुकमें हैं कि देखें आज सुलोचना किसको अपने जीवनका आधार बनाती है।

मंडपमें सब ही कन्याके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इधर-सुलोचनाका आगमन स्वयंवरके कोटके भीतर हुआ। रथसे उतर कर वह सर्वतोभद्र महलके ऊपर गई और चारों तरफ स्वयंवरकी शोभा देखने लगी। खास स्वयंवर मंडप भी इस तरहका रचा हुआ था। ऊपरसे बिलकुल छाया हुआ न था। ऐसा था कि सुलोचना सर्वतोभद्र महलसे राजकुमारोंको देख सकी थी। सुलोचनाने राजकुमारोंको देखकर यह मालूम किया कि हजारों ही राजकुमार बड़ी सजधजसे अलग २ विराजमान हैं। तुरंत ही वह उतरी और णमोकार मंत्रका ध्यान करती हुई रथ पर बैठी। महेंद्रदत्ता रथ हांकती हुई-रथको स्वयंवर भवनमें प्रवेश किया। रथ पर बैठी हुई सुलोचना एक ओरसे राजकुमारोंका निरीक्षण कर रही है। रथ धीरे २ चल रहा है। महेंद्रदत्ता हरएक राजा-कुमारका नाम, देश, वंश आदि बता रही है। प्रथम ही विद्या-धरोंकी तरफ रथ गया जहां नमि, विनमि, सुनमि, सुविनमि आदि विजयार्द्धके अनेक राजकुमार अपनी शोभासे जगमगा रहे थे, सब ही चंद्र तुल्य प्रकाशित थे उनमें यह उत्साह था कि कन्या हमको वर लेगी, परन्तु जिस राजकुमारके पाससे रथ निकल जाता था उसका उत्साह भंग होजाता था--उसके मुख-चद्रको उदासी रूपी मेघ घेरकर तमसाछन्नकर देता था। विद्या-धरोंको छोड़कर जब रथ भूमिगोचरी राजकुमारोंकी तरफ मुड़ा तब कुछ विद्याधरोंको जो अनेक विद्याओंसे भूषित होनेके कारण अपने अहंकारमें चूर थे बहुत ही क्रोध आया। परन्तु सभ्यताने उनके क्रोधको उनके भीतर ही रोक दिया। भूमिगोचरी राजा-

ओंको देखती हुई सुलोचना जा रही है। जब रथ राजकुमार अर्ककीर्तिके निकट आया तब सबको यह आशा हुई कि यह भरत चक्रवर्तीका पुत्र है—सबसे अधिक माननीय है बस सुलोचना इसीको वरेगी। अर्ककीर्तिको भी यही आशा थी कि मुझे छोड़कर किसको वर सक्ती है। परन्तु जब सुलोचनाका रथ एक क्षणमें अर्ककीर्तिको उल्लंघनकर गया तब प्रतीक्षाकारकोंको आश्चर्य और अर्ककीर्तिको क्रोध पिशाचने आकर घेर लिया। आगे बढ़ता ही रथ चला जाता है। भूमिगोचरी बड़े२ राजकुमार सब म्लानित होते जाते हैं। यकायक वह रथ जब जयकुमारके निकट आया सुलोचनाने इशारा किया, रथ रुक गया। जयकुमारके रूप और गुणोंने सुलोचनाके मनको यकायक बांध लिया। वह मन आगे न जासका न पीछे होसका। जन्मांतरका स्नेह भी था वह उमड़ आया। जयकुमारके चित्तसे सुलोचनाके चित्तको जोड़ दिया। उधर जयकुमार भी सुलोचनाके रूप व गुणोंके वशीभूत हो अपने चित्तको सुलोचनाके आधीन छोड़ देता हुआ। सुलोचनाने अपनी दृढ़ श्रद्धासे जब जयकुमारके साथ चित्तका सम्बन्ध कर लिया तब बाहरी चिन्ह दिखानेको सुलोचनाने महेन्द्रदत्ताके हाथसे रत्नमाला लेकर रथसे उतर यकायक दोनों हाथोंसे बड़ी भक्तिपूर्वक रत्नमाला जयकुमारके कंठमें पहरादी। मालाके पड़ते ही चहूं ओर गंभीर बाजोंकी ध्वनि होने लगी। राजा अकंपन और रानीसुप्रभा इस योग्य सम्बन्धको देखकर हर्षायमान हुए। जयकुमारने सुलोचनाको अर्धासन दिया। दोनोंपर पुष्पोंकी वृष्टि होनेलगी। चारों ओर विरदावली कहनेवाले कहने लगे " सोमवशी जयकुमार और

नाथवंशी सुलोचनाकी जय हो।" अन्य हजारों उपस्थित राजकुमारोंमें अनेक अवस्थाएं, होगईं। जो न्यायवान थे, वे तो इस सम्बन्धसे बहुत प्रसन्न हुए कि स्वयंवर मंडपकी रीति ही यह है कि जिसको कन्या वरे वही उसका वर, सो कन्याने वास्तवमें योग्य वर प्राप्त किया। कितने हीके मनमें यह उदासी आई कि स्त्रीका मोह आकुलताकारी है। हम इतने चावसे आए पर कन्याने हमको बरा नहीं। धिक्कार हो इस आशाको और धिक्कार हो इस आशातृष्णामई संसारको, हम तो अब घर जाकर जिनेन्द्री दीक्षा धारण करेंगे। कितने ही राजकुमार जो मान पर्वतपर चढे थे-क्रोधादिसे प्रज्वलित होगए और यह सोचने लगे कि सुलोचनाने हमारा और चक्रवर्तीके पुत्र अर्ककीर्तिका बड़ा भारी अपमान किया है, जो स्वतंत्र राजकुमारोंको छोड़ एक सेवकको वर लिया—यह जयकुमार भरतका चाकर एक सेनाका सिपाही है। खेद है इस कुलीन कन्याको लाज तक नहीं आई। मालूम होता है इसने विचार नहीं किया। यह पहलेसे ही इसके प्रेममें अंधी थी। राजा अकंपनने वृथा ही हम सब राजाओंको बुलाकर अपमानित किया। इतने ही में राजा अकंपन सेना सहित आए और जयकुमार सुलोचनाको एक रथमें विराजमानकरके गाजेबाजे जुलूसके साथ स्वयंवर मंडपसे बाहर आ नगरमें प्रवेश किया। जो न्यायवान व विचारवान राजकुमार थे वे भी अपने २ वाहनपर चढ जुलूसके साथ हो लिये परन्तु जिनके चित्तमें अभिमान था वे क्रोधके अग्निदाहमें जलने लगे और अपने स्थानसे उठने तकको असमर्थ

हुए । यह भारी जुलूस नगरमें प्रवेश हो रहा है । यत्रतत्र नर-नारी जयकुमार सुलोचनाको एक रथमें देख योग्य सम्बन्ध निश्चयकर आनन्दके प्रदर्शनके लिये पुष्पवर्षा कररही हैं । जगहं २ इनके प्रशंसारूप वचन व गान सुनाई देने लगे । प्रथम ही नित्यमनोहर नामके चैत्यालयमें गए और श्री जिनेन्द्रका दर्शनकर संतुष्ट हो राजमहल पधारे । राजा अकंपनने जयकुमारको अपना जमाई जानकर बड़ा ही आनन्द प्रदर्शित किया और जयकुमारकी शुश्रूषामें महलकी स्त्रियाँ दत्तचित्त हो गईं ।

चौथा अध्याय ।

अर्ककीर्तिका

जगतमें सज्जन दुर्जन दोनों प्रकारके मनुष्य होते हैं, जो दुर्जन हैं वे बुरे फलको न देखकर दुष्टता करनेको तय्यार होजाते हैं। जैसे राजकुमार अर्ककीर्तिका मन मानसे पीड़ित हो क्रोधसे कुछ सुलग रहा था वैसे उसके मुख्य सेवक दुर्मर्षणका चित्त भी क्रोधरूप हो आया। योग्य सेवकका कर्तव्य यह होना चाहिये कि यदि कहीं अपना स्वामी अनुचित क्रोध लोभादिमें पड़े तो उस स्वामीके कषायभावको शांत करके नीति मार्गपर ले आवे, परन्तु दैवयोगसे यह दुर्मर्षण सच्चा स्वामिहितका विचारनेवाला न था, यह सिर हिलाकर अर्ककीर्तिकी क्रोधरूप अग्निको अपनी वचनरूपी वायुसे प्रज्वलित करने लगा। कहने लगा महाराज आप चक्रवर्तीके पुत्र आपके सामने आपका सेवक एक कन्या रत्नको लेजावे और आप उसके लिये देखते ही रह जावें। यह अपमान बड़ा भारी है इसे कभी नहीं सहना चाहिये। यह जयकुमार बड़ा अविनयी दुष्ट है तथा यह राजा अकंपन और इसकी कन्या भी महान् अविनयी हैं। राजा अकंपनको उचित था कि अपनी कन्याको यह सम्मति देता कि आपके गलेमें रत्नमाला डाले। कन्याका भी गुप्त प्रेम जयकुमारसे विदित होता है, जो आप ऐसे प्रभावशाली श्री तीर्थंकर ऋषभदेवके पौत्रको छोड़कर आपके सेवकको वरलिया, ये सब ही निग्रह

करनेके योग्य है । इन शब्दोंने अर्ककीर्तिको मध्यान्हके सूर्य समान क्रोधसे तप्तायमान कर दिया और वह कहने लगा जैसा आचार्य कहते हैं—

प्ररूढ़ शुष्कनाथेन्दु दुर्वंश विपुलाटवी ।
मत्क्रोधप्रस्फुरद्वन्हि भास्मिताऽत्र रोक्ष्यति ॥—॥
वीरपट्टस्तदा सोढो भुवो भर्तुर्भयान्मया ।
कथमद्य सहे मालां सर्वसौभाग्यलोपिनीं ॥१७॥

भाव यह है कि अर्ककीर्ति कहता है कि बढ़ी हुई और शुष्क नाथ और चंद्रवंशकी बड़ी भारी बनी मेरे क्रोधकी स्फुरायमान अग्निसे भस्म होकर फिर न उगेगी अर्थात् मैं अपमान कर्ता, सभ्यता रहित, कठोर नाथ और चंद्रवंशजोंका वंशच्छेद कर डालूंगा कि उनमें कोई बचे ही नहीं । अब मेरे पिताने जयकुमारको सेनापतिका वीरपट्ट बांधा और मेरे नहीं बांधा, तब तो मैंने पृथ्वीनाथके भयसे सहन कर लिया, परन्तु आज मैं इस स्वयंवरकी मालाको कैसे सह सक्ता हूं जो मेरे सर्व सौभाग्यको लोपनेवाली है ? मैं आज जयकुमारको माला पहननेका मज़ा चखाऊंगा । और अकंपनको पश्चात्तापके गर्त्तमें पटकूंगा । अकंपन बहुत स्वच्छंद होगया है—चक्ररत्नको भूल गया है सो इसको भयके चक्रमें घुमाऊंगा । मेरा नाम तब ही अर्ककीर्ति सार्थक होगा जब मैं अपने आतापसे इनको पीड़ित करके इनके मानको मर्दन करूंगा ।

राजकुमारके साथ एक धर्मात्मा न्यायवान मंत्री भी थे । वह अनवद्यमंत्री ऐसी वचनरूपी ज्वालाको देखकर उसके शमनके

लिये बहुत ही न्यायपूर्ण और शांतिमय वचनरूपी जलकी वर्षा करने लगा। आचार्य कहते हैं–

महीव्योमशशी सूर्यः सरिदीशोऽनिलोऽनलः।
वमूत्वत्पिता घनाः कालो जगत्क्षेमविधायिनः॥
विपर्यासे विपर्येति भवतामनुवर्तनात्।
वर्तते सृष्टिरेषाहि व्यक्तं युष्मासु तिष्ठते॥ २५॥
क्षतात् त्रायत इत्यासीत् क्षत्रोऽयं भरतेश्वरः।
यौरसो ज्येष्ठः क्षत्रियस्त्वं तदादिमः॥२६॥
त्वत्तो न्यायाः प्रवर्तन्ते नूतना ये पुरातनाः।
तेऽपि त्वत्पालिता एव भवंत्यत्र पुरातनाः॥ ३१॥
सनातनोऽस्ति मार्गोऽयं श्रुतिस्मृतिषु भाषितः।
विवाहविधिभेदेषु वरिष्ठो हि स्वयम्वरः॥ ३२॥

भाव यह है कि मंत्री कहता है कि यह पृथ्वी, आकाश, चंद्रमा, सूर्य, समुद्र, वायु, अग्नि, मेघ, काल, आपके पिता और आप जगतको कल्याणके करनेवाले हैं। इनकी मर्यादारूप चालसे जगतके प्राणी अपना जीवन सुखसे निर्वाह कर सक्ते हैं। यदि ये विपरीत वर्तन करने लगें तो विपर्यय होजाय अर्थात् जगत् महा संकटोंमें पड़जाय–यह जगत आपका ही अनुकरण करता हुआ वर्तन करता है–यह जगत आपके ही आधीन है। जो प्रजाको हानिसे रक्षित करे उसे क्षत्री कहते हैं–आपके पिता यथार्थ क्षत्री भरतक्षेत्रके स्वामी भरतेश्वर हैं। आप उनहीके बड़े वारिस पुत्र हैं। आप भी उनके सर्व पुत्र क्षत्रियोंमें प्रथम क्षत्री हैं। आपहीके द्वारा

पुराने न्याय जैसे चलते हैं वैसे ही नवीन न्यायोंकी भी प्रवृति होती है और जो न्याय रूप नवीन बातें होती हैं वे ही आपके द्वारा पाली हुई यहां पुरानी पड़ जाती हैं। शास्त्रोंमें और स्मृतियोंमें यही बात कही गई है कि यह स्वयंबरकी विधि सनातनसे है। तथा विवाहके जितने विधान हैं उनमें यह स्वयंवरका विधान वास्तवमें सबसे उत्कृष्ट है। इसलिये इस विधिमें जो यह नियम है कि जिस किसी राजपुत्रके गलेमें कन्या वरमाला डाले वही उसका पति होता है उसे आपको भी मानना चाहिये, यही सच्चा न्याय है। यही पहलेसे भी चला आया है। आप यदि इसकी मान्यता करेंगे तो आप भी इस पुरातन न्यायके पुष्टिकर्ता होंगे और जो आप ऐसे क्षत्रियवीर सबोंको मार्ग बतानेवाले ही न्यायपथका उल्लंघन करेंगे तो जगतमें न्यायका प्रवर्त्तक कौन होगा, इससे हे महाराज! क्रोधको शांत कीजिये। कन्याका संबंध होचुका। इसमें न हमारा कुछ अपमान है न हमें कोई लोभ करना चाहिये। उसका सम्बन्ध भी इस हीके साथ होना था इस भविष्यको कौन टाल सक्ता है। इससे आप बड़े विचारशील धर्मात्मा हैं। आप अब इस सम्बन्धमें मौन रहिये और राजा अकंपनसे मिलकर अपने देश चलिये। आपके लिये राजकुमारियोंकी कमी नहीं है। आपके पूज्य पिता आपकी न्यायरूप प्रवृत्तिसे ही प्रसन्न होंगे। भरत महाराजको अन्यायका एक अंश भी नहीं सुहाता है। कृपानाथ शांत हूजिये। इतनी गंभीर वचनामृतकी धारा पड़ने पर भी जैसे दावानल शांत नहीं होती वैसे इस अर्ककीर्तिकी क्रोधाग्नि शांत नहीं हुई। आचार्य कहते हैं—

सर्वमेतत्समाकर्ण्य बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।
स्पष्टयन्निव दुर्बुद्धिरिति प्रत्याह भारती ॥ ५५ ॥

भाव यह है कि यह सब अनवद्य मंत्रीके न्यायरूप वचन सुनकर वह दुर्बुद्धि अपनी बुद्धिको न पलट सका और तीव्र कर्मोंके उदय अनुसार बुद्धि भी होजाती है इस बातको प्रगट करता हुआ वह अर्ककीर्ति बोला- हे मंत्री ! क्षत्रियोंका कर्तव्य अपमानका सहना नहीं है । हम इस अपमानका अवश्य बदला लेंगे । जयकुमार बड़ा अभिमानी है व यह कन्या बड़ी मायाचारिणी है, इसने पहलेसे ही अपना प्रेम जोड़ रक्खा था । यदि ऐसा न होता तो यह अन्य बड़े २ राजकुमारोंको छोड़कर क्यों एक सैनिक सेवकके गलेमें वरमाला डालती इससे इन दोनोंका अवश्य निग्रह करना चाहिये । आचार्य कहते हैं—

नाऽहं सुलोचनाऽर्थ्यस्मि मत्सरी मच्छरैरयं ।
परासुरधुनैव स्यात्किं मे विधवया तया ॥ ६० ॥

भाव यह है कि अर्ककीर्ति कहता है कि मैं सुलोचनाको नहीं मांगता हूं । मैं तो इस द्वेषी और अभिमानी जयको अभी ही प्राण रहित करूंगा फिर विधवा सुलोचनासे मुझे क्या प्रयोजन ?

बश, अनवद्य मंत्रीका और अधिक वक्तव्य सुने बिना ही अर्ककीर्तिने शीघ्र ही स्थानपर आकार सेनापतिको युद्धकी तय्यारीकी आज्ञा दे दी ।

आज्ञा पाकर सेनापतिने अपने साथमें आई हुई सेनाको तय्यार होनेकी आज्ञा दी और जितने राजकुमार अपने अनुयायी आए थे

उन सबको भी पत्र लिखकर युद्धमें साथ देनेकी सूचना दी तथा अयोध्या भी और अधिक सेना भेजेजानेके लिये पत्र भेजा।

हाथी, घोड़े, रथ प्यादे ये चार प्रकारकी सेनाएं तयार होगई। पैदलोंकी प्रशंसामें आचार्य कहते हैं—

चंडाः कोदंडकुंतासिप्रासचक्रादिभीकराः।
यांति स्मानुरथं क्रुद्धा रुद्धदिक्काः पदातयः॥

भाव यह है कि भयानक धनुष, बरछी, तलवार, शैल, चक्र आदि शस्त्रोंको लिये हुए क्रोधमें तप्तायमान पैदल दिशाओंको रोककर रथोंके पीछे चलनेको तय्यार होगए। अर्ककीर्तिने अपने लिये विजयघोष नामा हाथी सज्जित कराया।

इतने हीमें किसीने राजा अकंपनको यह सूचना की कि राजकुमार अर्ककीर्ति आप पर क्रुद्ध हैं और आपसे युद्ध करनेकी उद्धततामें उद्धत हैं। इस संवादरूपी वज्रने अकंपनके अचल हृदयको कम्पा दिया। वह यकायक मूर्छित होगया। निकटस्थोंने शीतलोपचारकर सचेत किया और धैर्य्य आलम्बनकी ओर संकेत किया। अकंपनको यह विश्वास था कि अर्ककीर्ति कभी भी न्यायपथको तजकर कुपथपर पग न रक्खेंगे, सो इस विश्वासको उखड़ता देख महादुःख सागरमें निमग्न होगया। वीर जयकुमार आए और धर्मरस गर्भित वीर वाणीरूपी औषधका पान कराकर अकंपनको फिर अचल और दृढ़ कर दिया। और समझाया कि आप निश्चिन्त रहिये, मैं स्वयं इस दुर्मतिकी मतिको ठिकाने लगाऊंगा। वह चक्रवर्तीका पुत्र होकर भी अन्याय पथपर चलनेसे

एक तुच्छ जन तुल्य है—उसे तृणकी भांति अपने पुरुषार्थ रूपी वायुसे उड़ा दूंगा। आप एक दफे दूत भेजकर समझानेका प्रयत्न करलीजिये। यदि नहीं ध्यानमें लाएंगे, वे अवश्य पछताएंगे—युद्धमें हार खाएंगे, लज्जासे सिर झुकाएंगे—न्यायके सामने अन्याय ठहर नहीं सक्ता, न्यायीका चित्त सिंह है तो अन्यायीका चित्त मृग है। आप धर्मको स्मरण करें—धर्मके प्रतापसे सब दुःख आताप शमन होगा। इन साहसपूर्ण शब्दोंने अकंपनको क्षत्रिय कर्तव्यमें आरूढ़ करदिया तथा दीनताके गर्तसे उद्धार लिया। उसने शीघ्र ही एक प्रवीण सैनिकको दूत नियतकर भेजा, उसने अर्ककीर्तिके पास जाकर राजा अकंपनका न्यायपूर्ण और प्रेमरस गर्भित संवाद कहा परंतु जैसे प्रज्वलित अग्नि पर छिड़का हुआ जलका छींटा अग्निको शमन नहीं करसक्ता वैसे इस वचनविलासने कुछ फल न निकाला, उल्टा अर्ककीर्तिकी क्रोधाग्निको अधिक दीपित कर दिया, जिससे अंकपन और जयकुमारकी ओर दुर्वचन रूपी फुलिंगें निकलकर दूतके भी शांत मनको संतप्त करने लगीं और वह दूत उनकी पीड़ाको अधिक न सह सकनेके कारण तुर्त लौट आया और महाराज अकंपनको अर्ककीर्तिकी पिशाचगृसित अवस्थाका चित्र खींचकर बताने लगा। विश्वासपात्र दूतके वचनोंपर विश्वास करके महाराज अंकपनने भी युद्धार्थ सज्जित होनेका संकल्प कर लिया। सेनापतिको सेनाकी तय्यारीके लिये आज्ञा की और प्रवीण गुप्तचरोंको भेजा कि वे अर्ककीर्तिके बलकी माप लावें कि कितने राजकुमार उनकी तरफ हैं व सेनाकी क्या दशा है। गुप्तचरोंने कुछ देर पीछे खबर दी कि महाराज जो न्यायी

राजपुत्र थे वे तो स्वयंवर होते ही प्रयाण कर गए थे। उनमेंसे बहुत थोड़े हैं वे सब आपका साथ देंगे तथा जो किंचित् भी असतुष्ट थे वे सब रुक गए थे सो अर्ककीर्तिकी तरफ वे सब युद्धके लिये सन्नद्ध हैं, उनकी सेना बहुत अधिक है। आपकी सेना बहुत थोड़ी है। इसका ठीक उपाय कीजिये नहीं तो विजयमें संदेह है। राजा अंकपन रानी सुप्रभाके साथ जयकुमारसे सम्मति करने लगे। शत्रुका बल अधिक जान जैसे ही जयकुमार और अकंपन कुछ विचार करते हुए रुके कि रानी सुप्रभाने कहा—आप चिंता न करें—आपकी सेनाकी संख्या अर्ककीर्तिसे अधिक होजायगी। यह आपत्ति काल है। इस समय हम स्त्रीसमाजको भी पूर्ण सहाई होना चाहिये। आपके राजमें स्त्रियां भी युद्धकलामें इसी लिये निपुणकी जाती हैं कि कभी काम पड़े तो देश व राजाकी रक्षाकर सकें। मैं सुभटोंकी स्त्रियोंको कहती हूं कि वे सानन्द राज्यकी सेवाके लिये व सुलोचनाके शीलकी रक्षाके लिये व अन्यायको दमन करनेके लिये सुभटका काम करगी। और आज्ञा हो तो मैं स्वयं तय्यार होजाऊं। राजा अकंपनने यह उपाय ठीक समझा कि इस समय स्त्रियोंसे भी काम लिया जाय। आप जयकुमारसे सम्मतिकर बोले—प्रिये! तुम्हारी सम्मति मान्य है पर तुम तो इस सुलोचनाकी रक्षा करो, कदाचित् शत्रुने इसका हरण किया तो बड़ी लज्जाकी बात होगी। इसलिये सुभटोंकी स्त्रियोंको युद्धके लिये आज्ञा करके तुम सुलोचनाको लेकर नित्यमनोहर चैत्यालयमें तिष्ठो। महाराज अकंपनने सुलोचनाको बुलाया और आज्ञा की कि हे पुत्री! तुम अपनी माताके साथ चैत्यालयमें ठहरकर

शांति पूजा करो। पुत्री कहती है महाराज! आज्ञा हो तो मैं भी इस आपत्तिकालमें युद्धार्थ चलूं। जब आपने मुझे युद्धकला सिखाई है तब उसकी परीक्षाका तो यही समय है। महाराजने कहा—प्रिय पुत्री यह सब सच है परंतु तुम्हारा गुप्त रहना ही श्रेयस्कर है। कदाचित् तुम्हें बलात्कार शत्रु लेगया तो हमारे वंशको बड़ा कलंक लगेगा—इस लिये तुम चलो, चैत्यालयमें ही तिष्ठो। आचार्य कहते हैं—

कुर्वती शांतिपूजां त्वं तिष्ठ मात्रेति सादरं।
प्रवेश्य चैत्यधामाग्र्यं सुतां नित्यमनोहरं ॥१०४॥

भाव यह है कि अकंपनने सुलोचनाको जिन चत्यालयमें पहुंचाकर कर यह आज्ञा की कि तू अपनी माताके साथ यहां बड़ी भक्तिके साथ शांतिपूजा करती हुई तिष्ठ। यद्यपि हम श्रीजिनेन्द्रसे कोई निदान नहीं करसक्ते तथापि पापकर्मका नाश और पुण्य कर्मका लाभ श्री जिनेन्द्रकी भक्ति और पूजा द्वारा प्राप्त विशुद्ध परिणामोंसे होता है यह बात शास्त्रसम्मत है—इस कारण नित्य ही भगवत्‌का पूजन करना चाहिये और जब कोई संकट आवे तब विशेष पूजामें तन्मय होना चाहिये जिससे पापका नाश होजावे इसलिये तू पूजामें चित्त लगा। इधर सेनापतिने खबर दी कि महाराज हमारी सेनाके सुभटोंकी स्त्रियां भी युद्धार्थ सिपाहीकी पोशाक पहनकर आगई हैं—प्रत्येक सुभटने अपने घरमेंसे एक स्त्रीको लेलिया है। अब हमारी संख्या अर्ककीर्तिसे अधिक होगई है। आचार्य कहते हैं—

योपितोऽप्यभटायंत पाटवात्संयुगं प्रति ।
ततः प्रतिबलात्तत्र भूयांसो वा पदातयः ॥ ९९ ॥

भाव यह है कि स्त्रियां भी अपनी चतुराईसे युद्धके लिये सुभटका काम करने लगीं इससे शत्रुके बलसे इस बलमें पैदल सेनाकी संख्या अधिक होगई ।

जयकुमार विजयार्द्ध हाथीपर चढ़े । सुकेतु, सूर्यमित्र, श्रीधर, जयवर्मा, देवकीर्ति आदि अनेक राजपुत्र सेना सहित जयकुमारके साथ हुए । जयने अपनी सेनाकी रचना मकरव्यूह अर्थात् मगरमच्छके आकार बनाई । अर्ककीर्तिने अपनी सेनाको चक्रव्यूहमें सजा । बहुतसे विद्याधर भी दोनों तरफसे तय्यार हुए । युद्धके बाजे बजने लगे । नगर बाहर मैदानमें दोनों सेनाएं अड़ गईं । युद्धमें हाथी हाथी, घोड़े घोड़े, रथ रथ व पयादे पयादोंसे लड़ने लगे । बहुतसे योद्धा दोनों तरफसे मरे और घायल हुए कोई २ घायल सिपाही मरणके सन्मुख होते हुए पंचपरमेष्ठीका स्मरणकर शुभ गतिमें गए । आचार्य कहते हैं:-

कस्यचित् क्रोधसंहारः स्मृतिश्च परमेष्ठिनि ।
निष्ठायामायुषोऽत्रासीदभ्यासात् किं न
साध्यते ॥ १३० ॥

भाव यह है कि आयुके अंतमें किसी किसीके क्रोध जाता रहा और वह पंच परमेष्ठीके स्मरणमें दत्तचित्त होगया । जिनको पूर्वमें अभ्यास रहता है वे अवश्य अंतमें भी धर्मध्यान कर सक्ते हैं । अभ्याससे क्या क्या नहीं होता ।

परस्पर युद्ध होते हुए जब संध्या निकट आने लगी तब युद्ध बंद करा दिया गया क्योंकि यह नीतिका युद्ध था। धर्मकी रक्षा करते हुए ही आरंभ करना गृहस्थका कर्तव्य है, ऐसी जो श्री रिषभदेवकी शिक्षा थी उसको मान्य करके रात्रिको विश्राम व धर्मध्यान करना व प्रातःकाल भी नित्यकर्म करके फिर युद्धारंभ करना यही उचित रीति थी। जैसा आचार्य कहते हैं–

तदा बलाढ्यामाशाः श्रित्वा बद्धरूपौ नृपौ ।
इत्यधर्म्यं निशायुद्धमनुबद्ध्य न्यषेधयन् ॥ २७ ॥

भाव यह है कि तब दोनों तरफके सेनापतियोंने अपने राजाओंको यह समझाकर कि रात्रिका युद्ध अधर्म है युद्धको बंद कराया। रात्रिको योद्धा अपने नित्य कर्मके पीछे अपने २ डेरोंमें निश्चिन्त हो आराम करने लगे। बहुतसे सुभटोंकी स्त्रियां भी अकंपनकी सेनामें सैनिक रूपमें आई थीं उन्होंने रात्रिको अपने पतियोंसे संभाषण करके अपने कोमलांगमें वीर भावको और भी अच्छी तरह भर लिया। स्त्रियोंमें पुरुषार्थ आजानेसे उन्होंने इस आपत्तिकालमें अपने स्त्रीत्वको भुला दिया था।

रात्रि वीती–प्रातःकाल हुआ–उधर सूर्य पूर्व दिशासे प्रगट होनेकी तय्यारीमें पूर्व दिशाको रक्त बर्ण दिखा रहे हैं, इधर सर्व सेनाके नरनारी शय्या छोड़ भगवत् भजनमें लवलीन हो रहे हैं। अति प्रातःकाल सामायिक द्वारा आत्म चिंतवनमें तन्मय होगए। यह तप गृहस्थीको अवश्य कर्तव्य है। फिर नित्य स्नानादि क्रिया करके श्रीजिनेन्द्र पूजनादि धर्मध्यान करके भोजनपानसे छुट्टी कर लिये सज्जित हुए। आचार्य कहते हैं–

शयित्वा वीरशय्यायां निशां नीत्वा नियामिनः।
स्नात्वा संतर्पिताशेषदीनानाथवनीपकाः ॥ ३१८॥
अंचित्वा विधिना स्तुत्वा जिनेन्द्रांस्त्रिजगन्नुतान्।
अतिष्ठन्नायकाः सर्वे परिच्छिद्य रणोन्मुखाः ॥३१९॥

भाव यह है कि नियमसे चलनेवाले योद्धाओंने वीर शय्या द्वारा रात्रिको शयन किया फिर सवेरे उठकर स्नान करके विधि पूर्वक तीन जगतसे वंदनीक श्री जिनेन्द्रोंकी पूजा व स्तुति करके सर्व दीन अनाथ व याचकोंको संतोषित किया और सेनाका विभाग करके सब रणके सन्मुख होगए। दोनों सेनाएं युद्ध क्षेत्रमें आडटीं। इस समय जयकुमार सफेद घोड़ेवाले रथपर आरूढ़ थे–जिस रथकी ध्वजामें हाथीका चिन्ह था और अर्ककीर्ति काले घोड़े वाले रथपर चढ़े थे जिस रथकी ध्वजामें चक्रका चिन्ह था। अर्ककीर्तिने बड़े वेगसे आकर जयकी ध्वजा, छत्र और शस्त्र छेद दिये, जय कुछ घबड़ाए कि यकायक इनको इनके मित्र एक देवने अर्द्ध चंद्र बाण नाग–पाश भेट की। जयकुमार द्वारा इस देवके जीवका कुछ उपकार हुआ था, सज्जन सदा ही प्रत्युपकारका अवसर देखते रहते हैं सो इस देवकी साधु आत्माने जयकी मदद कर अपने प्रत्युपकार द्वारा अपना ऋण अदा किया। इन दोनों दिव्य शस्त्रोंको पाकर जयने यकायक साहस करके नागपाश छोड़कर अर्ककीर्तिको बांध लिया। और अपने रथमें लेलिया। अर्ककीर्तिके पकड़े जानेसे उसकी अवशेष सेनाके छक्के छूट गए–भागने लगी। जयकुमारकी सेनामें जीतके बाजे बजे। भटोंने गीत गाने शुरू किये। देवोंने आकाशसे पुष्प वृष्टि की। अकंपनकी सेनामें

मंगलीक आनंदने अपना स्थान करके जैसे प्रातःकाल पूर्व दिशामें संध्या प्रगट हो सर्व निशाके अंधकारको भगा देती है ऐसे ही आनंदकी मंगल अवस्थाने अर्ककी सेनाको भगा दिया। अकंपनकी सेनाने जयके चिन्हों सहित नगरमें प्रवेश किया। नरनारी न्यायकी विजय देखकर आंखोंमें आनंदके आंसु भर लाए मानों आनंद भीतर न ठहर सका और आंसुरूपी मोतियोंके द्वारा राजा अकंपनकी भेट होता हुआ—नगरमें यत्रतत्र मंगलगीत होने लगे। सर्व सैनिक नित्य मनोहर चैत्यालयमें वंदनार्थ गए जैसा आचार्य कहते हैं—

विचिंत्य विश्वविघ्नानां विनाशोऽर्हत्प्रसादतः ।
इति वंदितुमाजग्मुः सर्वे नित्यमनोहरं ॥ ३७५ ॥

भाव यह है कि यह विचारकर कि श्री अर्हंत भगवानके प्रसादसे सर्व विघ्नोंकी शांति हुई है सर्वजन नित्यमनोहरचैत्यालयमें वंदनार्थ आए।

यह जिन मंदिर राज्य महलमें बहुत विस्तीर्ण और दर्शनीय था। राजा अकंपन भी आए। सुलोचना इसी मंदिरजीमें उसी युद्धारंभके समयसे भोजन पानका त्याग किये हुए ध्यान और पूजामें मग्न थी। जैसा आचार्य कहते हैं।

स्वयं च संचिताघानि हन्तुं स्तुत्वा जिनेशिनः ।
अकंपनमहाराजः समालोक्य सुलोचनां ॥ २ ॥
कृताहारपरित्यागनियोगामायुधस्तदा ।
सुप्रभाकृतपर्युष्टिं कायोत्सर्गेण सुस्थितां ॥ ३ ॥

सर्वशांतिकरीं ध्याति ध्यायंतीं स्थिरचेतसा।
धर्म्यामेकाग्र्य निष्पंदां जिनेन्द्राभिमुखीं मुदा ॥४॥
समभ्यर्च्य समाश्वास्य प्रशस्यबहुशो गुणान्।
भवन्महात्म्यतः पुत्रि शांतं सर्वममंगलं ॥ ५ ॥

भाव यह है कि अपने संचित पापोंको नाश करनेके लिये महाराज अकंपनने श्री जिनेन्द्रकी स्तुति पढ़ी फिर सुलोचनाको देखा कि वह जबतक युद्ध समाप्त न हो तबतकके लिये आहार त्यागका नियम लिये हुए कायोत्सर्ग खड़ी हुई सर्व शांतिको करनेवाले धर्मध्यानको स्थिर चित्तसे ध्याती हुई हलन चलन रहित एकाग्र हो बड़ी प्रसन्नतासे श्री जिनेन्द्रकी प्रतिमाके सन्मुख शोभायमान हो रही है और सुप्रभादेवी निकट बैठी धर्मध्यानमें तल्लीन है। इस तरह माता व पुत्रीकी भक्ति देखकर राजा अकंपनको बड़ा आनन्द हुआ। महाराजने अच्छी तरह श्रीजिनेन्द्रकी पूजा की और फिर सुलोचनाके पास आकर उसके गुणोंकी महिमा करके अंतमें कहा कि हे पुत्री! तेरी ही भक्तिके महात्म्यसे सर्व अमंगल शांत होगए और राजकुमार जय यहां उपस्थित हैं, अर्ककीर्ति अन्यायी बंधनमें है-हमारी सेनामें सर्व क्षेम है। अर्ककी सेना पलायमान होगई है। प्रिय पुत्री! धन्य है तू-तेरी आत्मनिष्ठा प्रशंसनीय है-तू स्त्रीरत्नोंमें श्रेष्ठ है-तूने अपने कर्तव्यको यथार्थ पाला है। श्रीजिनेन्द्र भगवानके शुद्ध आत्मीक गुणोंमें जो आल्हाद भाव प्राप्त करते हैं उनके पापोंका क्षय और पुण्यका अपूर्व लाभ होता है। कहा भी है:-

विघ्नौघाः प्रलयं यांति शाकिनीभूतपन्नगाः ।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥

भावार्थ—श्रीजिनेश्वरकी स्तुति करनेसे शाकिनी भूत प्रेत नागादि कृत विघ्नोंके समूह नष्ट होजाते हैं, विष उतर जाता है। जब भक्तिमें परिणाम भीज जाते हैं तब महान् पुण्यबंध होता है चित्त प्रासादसे अर्थात् चित्तमें आत्मीक आनंदसे जब हर्षांकुर उगते हैं उस भावको ही शुभोपयोग कहते हैं। वही प्रशस्त भाव कहलाता है। यह भाव अर्हंत भक्तिसे जागृत होजाता है जैसा श्री कुन्दकुन्दाचार्य श्री पंचास्तिकायमें कहते हैं—

अरहंतसिद्धसाहुसु भत्ती धम्मम्मि जाय खलु चेट्ठा
अणुगमणं वि गुरूणां पसत्थ रागोत्ति वुच्चंति ॥१४३

भावार्थ—अरहंत, सिद्ध, साधुमें भक्ति, धर्ममें उत्साह व गुरुकी आज्ञाप्रमाण चलना प्रशस्त राग कहलाता है। महाराज अकंपन कहते हैं कि हे पुत्री! अब ध्यान समाप्तकर श्री भगवानकी स्तुतिकर और राजभवनमें चल। सुलोचना और सुप्रभा ध्यान पूर्णकर बड़े भावसे श्री अरहंतकी स्तुति करती हैं। जिस स्तुतिका कुछ भाव इन पदोंमें पाठकगण समझें।

हे जिनेश शिवपति महेश ।
महिमा अपार भवतम दिनेश ।
परमात्म परम पावन सुवीर ।
कर्मादि सैन चूरन सुधीर ।
निजगुणआभूषण शोभमान ।

चैतन्यमई न विकारवान।
क्रोधादि कषाय न पास कोय।
वैराग्य सुनिर्मल धाम जोय।
बैठे निश्चल निज धन सम्हाल।
निज दृग ज्ञानमय वे मिसाल।
नहिं आश्रवभाव लखाय कोय।
शुद्धोपयोगमय आप सोय।
है आत्मवली वीरज अपार।
योगिगण पावत नाहिं पार।
सर्वज्ञ सर्वदर्शी निहार।
निर्दोष निजानंदी विचार।
शरणा आए अशरण अधार।
तुमरी सेवा यहु अघनिवार।
मिथ्यात्वपटल क्षणमें विलाय।
अज्ञानतिमिर चंहु दिशा पलाय।
चारित्र स्वरूपाचर्ण पाय।
निज आतमगुण अनुभव लखाय।
सब विघ्न आ ही शमन थाय।
मंगल घटघटमें व्याप जाय।
हूं धन्य दर्श पाया सुसार।
निज जन्म सफलताका प्रकार ॥ ७ ॥

इस तरह स्तुति करके रानी सुप्रभा सुलोचनाको लेकर महाराजा अकंपनके साथ राज्य भवनमें पधारीं। सुलोचनाने इस

दिन भी उपवास रक्खा और पिताजीसे कहा कि अर्ककीर्ति भरत चक्रवर्तीका जेष्ठ पुत्र है। अच्छा हो यदि उसको बंधन मुक्त किया जाय और प्रेमके बंधनमें उसे बांध लिया जाय। पुत्रीके वचन प्रमाण कर महाराजा अकंपनने मंत्रियोंसे मंत्रकर सेनापतिको आज्ञा की कि अर्ककीर्तिको बंधन मुक्त करे व यहां लावे। सेनापतिने बंधन मुक्त कर दिया, अर्ककीर्ति अधोमुख किये हुए महाराजा अकंपनके पास आए—महाराजाने उनको सिंहासन दिया और सामने खड़े हो अपने अपराधकी क्षमा मांगी और प्रार्थना की कि सुलोचनाके न्याय प्राप्त वर तो जयकुमार हो चुके परंतु मैं अपनी द्वितीय कन्या लक्ष्मीवती आपके चरणोंमें भेट करूंगा—आप अपनी प्रेम दृष्टिको पूर्ववत् स्थिर रक्खें। आप स्वामी हैं, मैं आपका सेवक हूं—मुझे बहुत खेद है कि जो आपका सामना युद्धमें करना पड़ा। कर्मोदय बड़ा बलवान है जिसने आपकी बुद्धिको न्याय मार्गसे विचलित करदिया। सनातनकी यही रीति है कि स्वयम्बरमें कन्याको अधिकार होता है कि चाहे जिसके हृदयमें वरमाला डाले। कन्या स्वयं परीक्षा कर सक्ती है। वह कुल आदि समझकर स्वयं अपनी भक्तिसे वर पसंद करके उसके कंठमें वरमाला डालती है—इस न्याययुक्त कार्यमें किसीको विरोध करनेका अवकाश नहीं है। इस युद्धमें श्रीजिनेंद्र देवकी कृपासे बहुत हानि नहीं हुई शीघ्र शांत होगया। नहीं तो मालूम नहीं क्या और आपत्तियां आजातीं। खैर! अब आप शांत होजावें—राज्यनीति व धर्मशास्त्रोंका विचार करें, आप ही जगतके नेता हैं—आपकाही अनुकरण प्रजाजन करेंगे। हमारे अपराधको क्षमा करें

और पूर्ववत कृपादृष्टि रक्खें। इस प्रकार अति कोमल न्यायपूर्ण वचनावलीने अर्ककीर्तिको और भी लज्जित किया—वह दबे मुखसे कहता हुआ-महाराज भावी बलवान है--मुझे स्वयम् अपने कृत्य पर बहुत पश्चात्ताप है। मैंने अपने मंत्रीकी सुसम्मति नहीं मानी इसीसे लज्जित होना पड़ा। मेरा आपसे पूर्ववत् हित है, आप कोई शंका मनमें न लावें। फिर महाराज अकंपन अर्ककीर्तिको लेकर श्री नित्यमनोहर चैत्यालयमें गए और वहां अष्ट द्रव्य तय्यार कराके दोनोंने बड़ी भक्तिभावसे स्नानकर शुद्ध वस्त्र पहन श्री जिनेन्द्रकी अष्ट प्रकारी पूजा की और बारम्बार स्तुति करके अपने पापोंकी शांति की। आज दिन इन दोनोंने भी भोजन पान नहीं किया। दूसरे दिन प्रातःकाल नित्य कर्म करके तथा पात्रोंको दान देकर महाराज अकंपनने पुत्री सुलोचनाको पारणा खुलवाया। फिर अर्ककीर्ति, जयकुमार आदिके साथ स्वयं भोजन किया। सर्व कुटुम्बमें आनन्द छा गया।

महाराज अकंपनने आठ दिनोंके लिये एक बड़ी पूजाके लिये सब जगह खबर कराकर एक बड़ा उत्सव आरम्भ कराया जिसके लिये तय्यारियां होने लगीं। तथा यह भी निर्णय होगया कि महापूजाके पीछे जयकुमारका सुलोचनाके साथ और राजकुमार अर्ककीर्तिका लक्ष्मीमतीके साथ विवाहका उत्सव किया जावे। गृहस्थके परिणामोंको शांतिमें लानेके लिये तथा पापकर्मोंके क्षय करनेके लिये श्री जिनेन्द्रकी आठ प्रकारी पूजा बड़ी ही उपयोगी वस्तु है। प्राचीनकालमें राजा प्रजा सब गृहस्थ इस पूजा पाठ जप तप स्वाध्यायादि गृहस्थ कर्तव्यमें भले प्रकार लवलीन थे।

———

पांचवां अध्याय।

सुलोचनाकी भक्ति।
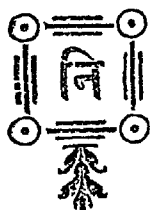
नियत दिनसे पहले ही नगरभरमें विशेषोत्सवके लिये भारी आन्दोलन होगया। जैसे महाराज अकंपनने अपने नित्यमनोहर चैत्यालयमें महापूजा-का आरंभ कराया वैसे ही नगरमें सैकड़ों जिन मंदिरोंमें महापूजाका आरंभ होगया। क्योंकि राजाकी अनुगामिनी प्रजा हुआ करती है। यह चौथे कालका आदि समय था। अधिक जनता जैन धर्मको पालनेवाली थी। यह भी समाचार आसपास फैल गया था कि महापूजाके पीछे सुलोचना और लक्ष्मीमतीका विवाह होगा इससे नगरमें परदेशी जनताकी भी बहुत भीड़ आगई थी।

महाराज अकंपन, रानी सुप्रभा, अर्ककीर्ति आदि नित्य-मनोहर चैत्यालयमें पधारे। महाराज जयकुमार व हेमांगद आदि व जयके भाई ये सब श्री जिनमंदिरजीमें आगए। महापूजाका प्रारंभ हुआ। जैसे नित्यमनोहर चैत्यालयमें उत्सव सहित प्रतिदिन पूजा होने लगी ऐसी ही पूजा अन्य मंदिरोंमें भी शुरू हुई। मानों सर्व प्रजा यकायक श्री जिनेन्द्रकी भक्तिमें तल्लीन होकर भक्तिसे पैदा होनेवाले आत्मीक आनन्दरूपी जलसे अपने सर्व पाप मलोंको धोना चाह रही है। श्री जिन भक्तिरूपी गंगाहीमें यह

असर है जो अंतरंगके पाप मलोंको छुड़ा दे। मात्र गंगाका जल तो बाहरी शरीरको शुद्ध करता है आत्म-मलको नहीं। आठ दिन तक नगरभरमें बड़ी शांति रही और शांति पूजा चली तथा अन्तमें महा अभिषेक हुआ जैसा आचार्य कहते हैं–

शांतिपूजां विधायाष्टौ दिनानि विविधर्द्धिकां।
महाऽभिषेकपर्यंतां सर्वपापोपशांतये ॥ २७ ॥

भाव यह है कि नाना प्रकार ऋद्धियोंसे पूर्ण शांति पूजा आठ दिन तक की गई अंतमें महा अभिषेकके आनन्दका भाव प्रदर्शित किया गया जिससे कि सर्व पापोंकी शांति हो। वास्तवमें जिनेन्द्रकी अर्चा महान लाभ प्रदान करनेवाली है, पापोंको धोकर पुण्यके मनोहर रंगसे रंगनेवाली है। पूजकके मनको विषय कषायके आतापसे शीतल-कर वीतरागताके आनन्दमें मग्न करनेवाली है।

श्री समन्तभद्राचार्य स्वयंभूस्तोत्रमें कहते हैं–

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे।
न निन्दया नाथ विवान्तवैरे ॥
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः।
पुनातु चित्तं, दुरिताञ्जनेभ्यः ॥ ५७ ॥

पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य।
सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य।
न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ ॥ ५८ ॥

भाव यह है कि हे वीतराग भगवान! आपमें राग द्वेष नहीं है इससे कोई आपकी पूजा करो, इसमें आपका कोई प्रयोजन नहीं है तथा आपकी कोई निन्दा करे तो आपमें कोई विकार नहीं होता तथापि जो आपके पवित्र गुणोंका स्मरण पूजा द्वारा करते हैं उनके चित्तके पाप रूपी मैल कट जाते हैं और चित्त पवित्र होजाता है। यद्यपि अष्टद्रव्यसे पूजा करनेमें सामग्रीका आरंभ करते हुए कुछ हिंसाका दोष भी आता है तथापि महान् पुण्यका संचय होता है इससे गृहस्थके लिये बहुत अधिक लाभकारी है। जिस प्रकार शीतल-निर्मल जलसे भरे हुए समुद्रमें विषकी एक कणिका जलको दूषित नहीं कर सक्ती उसी तरह जहां अटूट चित्त प्रासाद होकर महान् पुण्यका बन्ध होता है वहां किंचित् आरंभजनित पाप दोषकारी नहीं होसक्ता।

भक्तिवती सुलोचना भी आठों दिवस पूजामें अनुरक्त रही। संभव हो कि यह सिद्धचक्रका पाठ हो जो आठ दिन तक किया जाता है व जिसमें सिद्धके गुणोंकी अपूर्व महिमा बताई है व इसमें १०८ मनुष्य एक साथ श्री जिनेन्द्रकी प्रतिमाके चारों ओर खड़े हो कर सक्ते हैं। इस महान् पूजाके पीछे महा अभि-षेकका होना शांतिविधायक व साधारण जनताको प्रभावनाका देने वाला होता है तथा नरनारी अभिषेकके गंधोदकसे अपने मस्तकको पवित्र करते हैं।

आठवें दिन पूजाकी समाप्तिपर राजा अंकपनने जयकुमार और अर्ककीर्तिका प्रेममई शब्दोंमें मेल करा दिया—दोनोंका मन पूर्ववत् एक होगया, जयकुमारका मन तो निर्मल था ही। अर्क-

कीर्तिके मनमें जो पहिले द्वेषने फिर लज्जाने घर कर लिया था उस भावको महाराज अकंपनने हटा दिया।

महाराज अकंपनने यह उचित समझा कि पहले चक्रवर्तीके पुत्रका विवाह उत्सव करके उनको विदा किया जाय पीछे सुलोचनाका विवाह जयके साथ विधि पूर्वक किया जाय। बस महापूजाके पीछे लक्ष्मीमती अथवा अक्षमालाका विवाह जैन विधिके अनुसार राजकुमार अर्ककीर्तिके साथ होगया। महाराज अकंपनने बहुत योग्य उपभोग्य सामग्री देकर अर्ककीर्तिको अक्षमालाके साथ श्री अयोध्याजीको विदाकिया। अर्ककीर्तिका मन बहुत प्रसन्न होगया। काशी देशकी प्रजासे योग्य सन्मानको प्राप्तकर अर्ककीर्ति महाराज अकंपनकी सज्जनताकी बारम्बार प्रशंसा करने लगा।

कुछ दिन पीछे सुलोचनाका विवाह जयकुमारके साथ हुआ वह देव जिसने स्वयंवर मंडप रचवाया था इस समय फिर आया और महान मनोहर विवाहकी वेदिकामें उस देवके सामने जैन पूजा विधान सहित सुलोचना जयकुमारको परणा दीगई। विवाह एक मंगलीक कार्य है इसमें विघ्नकी शांतिके लिये वरवधू धर्मके अंगको सम्हालते हुए और परस्पर प्रेम रखते हुए गृहस्थ धर्म पाले इस लिये जिनेन्द्र देवकी अर्चाका विधान किया जाता है। वास्तवमें यह योग्य ही है कि प्रत्येक मंगलीक कार्यमें मंगल स्वरूप अरहंत सिद्ध आदिका पूजा विधान द्वारा गुण स्मरण किया जावे।

महाराज अकपनके मनमें यह शल्य चुभती थी कि चक्रवर्ती भरत शायद मुझसे असंतुष्ट हों इसलिये एक दिन मंत्रि-

योंसे मंत्रकर उन्होंने बहुत प्रवीण सुमुख नामके दूतको चक्रवर्तीके पास भेजा। सभामें उचित सन्मानके साथ दूत भरतजीके पास पहुंचा। भरतने अपने समीप योग्य आसन पर बिठाया। सुमुखने महाराज अकंपनकी तरफसे दीनताके वचन कहते हुए प्रार्थना की कि हे महाराज! महाराजा अकंपनने आपके जेष्ठ पुत्रके साथ जो युद्ध किया इससे वे बहुत लज्जित हैं और इस अपराधके लिये जो दंड आप उचित समझें प्रदान करें वे उस दंडको आपकी कृपाका पुण्यहार समझकर ग्रहण करेंगे और योग्य प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होंगे। महाराज भरत अकंपनकी ऐसी सज्जनतासे चकित होगया—मनमें विचारने लगा कि अपराध तो मेरे पुत्रका ही है, अकंपनका तो कोई भी अपराध नहीं। स्वयंवरकी रीतिमें-मेरे पुत्रने बाधा डाली और युद्धको तय्यार होगया। उस समय बचाव करना अकंपनका कर्तव्य था। मेरे अन्यायी पुत्रको फिर भी अकंपनने अपनी पुत्रीसे सन्मानित किया इस सज्जनताका उपकार मैं भूल नहीं सकता। फिर भी अपने अपराधकी क्षमा प्राप्तिके लिये दूतको भेजना, अपराध न होते हुए भी अपराध मानना इस महाराज अकंपनकी साधुता, धर्मज्ञता व मेरी आधीनताका कहांतक मैं उपकार मानूं, अपने पास और कोई शब्द न पाकर इन्हीं शब्दोंमें दूतको उत्तर दिया। जैसा आचार्य करते हैं—

अमुनाऽन्यायवर्त्मैव प्रावर्तितं न केवलं।
इह स्वयं च दंड्यानां प्रथमः परिकल्पितः॥ ६०॥
जय एव मदादेशादीदृशोऽन्यायवर्तिनः।
समीकुर्यात्ततस्तेन स साधु दमितो युधि॥ ६२॥

सदोषो यदि निग्राह्यो ज्येष्ठपुत्रोऽपि भूभुजा।
इति मार्गमहं तस्मिन्नद्य वर्तयितुं स्थितः ॥ ६३ ॥

भाव यह है–हे सुमुप ! मेरे पुत्र अर्ककीर्तिने केवल अन्याय मार्गमें ही प्रवृति नहीं की किन्तु वह इस जगतमें दंड देने योग्य अपराधियोंमें प्रथम शिरोमणि होगया–इस कालमें ऐसा अपराध सबसे प्रथम मेरे पुत्रने किया है। ऐसे अन्याय मार्ग पर चलने वालेको जयकुमार ही मेरी आज्ञासे सीधा कर सक्ता है। उसने जो युद्धमें इसे दमन किया सो बहुत ही अच्छा किया। राजाका यह धर्म है कि उसका बड़ा पुत्र हो यदि सदोषी हो तो उसको दंड देना चाहिये। यही राज्य नीतिका मार्ग है। मैं उसी न्याय मार्ग पर स्वयं चलने व चलानेको सदा आरूढ हूं। इस लिये मैं अकंपन या जयका दोनोंका बड़ा उपकार मानता हूं। मैं स्वयं अपने पुत्रके अपराधसे उनके सामने लज्जित हूं। सुमुष ! तुम मेरी तरफसे महाराज अकंपनको अच्छी तरह आश्वासन देना कि मेरा आपसे बड़ा प्रेम है। मैं आपको एक बड़ा नीतिप्रवर्तक गृहस्थशिरोमणि समझता हूं। और अपने साम्राज्यकी शोभा आप ऐसे राजाओंके प्रेमभावसे ही बढ़ती हुई मानता हूं।

सुमुषदूत ऐसे कृपाके वचनरूपी जलसे सींचाहुआ रोमांचित होगया और यथायोग्य प्रणामकर विदा मांग शीघ्र ही महाराज अकंपनको भरतके वचन सुनाए। सुनकर महाराज बहुत ही संतुष्ट हुए और अपनेको भरतकी कृपाका भाजन पूर्ववत् जानते हुए।

जयकुमार सुलोचनाका बड़ा ही गाढ़ा प्रेम था। विवाहके पीछे कई मास तक जयकुमार यहीं रहे और परस्पर दोनों व्यक्ति सच्चे हार्दिक प्रेमसे नानाप्रकार भोग विलास व धर्म कार्य करते इन्द्र इन्द्रानीके समान सुख रूपसे रहते हुए अपना समय वीतता न जानते हुए।

उधर हस्तिनापुरमें जयकुमारके आगमनकी प्रतीक्षा होरही थी। वहां उचित समझकर राज्यके मंत्रीने जयकुमारको निजदेश आनेको प्रार्थनारूप एक पत्र भेजा, पत्रको पाते ही जयकुमारके चित्तमें स्वराज्यकी चिंताने घर करलिया और अब वह काशी ठहरनेको असमर्थ होगया। अवसर पाकर महाराजा अकंपनसे विदाकी आज्ञा मांगी। अकंपन महाराजने शुभ दिनमें बहुत दानदे अपनी पुत्री सुलोचनाके साथ जयकुमारको विदा किया। साथमें जयकुमारके छोटे भाई व सुलोचनाके भाई हेमांगद आदि भी आए। विजयार्द्ध हाथीपर जयकुमार सुलोचना सहित आरूढ़ हुए। नगरमें बड़ा जुलूस निकाला गया बड़े उत्सवके साथ जयकुमार सेना सहित नगर बाहर गए। महाराज अकंपन भी थोड़ी दूर पहुंचाने आए, फिर लौट गए। गंगा तटपर चलते हुए जब अयोध्या निकट रहगई तब गंगा तटपर डेरा किया। सुन्दर वस्त्रोंके मनोहर डेरोंसे वह वन नदी तटपर नगररूपमें परिणत होगया। जयकुमार सुलोचनाके मुखपंकजमें भ्रमरवत् आशक्त था। रात्रिको निज डेरेमें विश्राम करके परस्पर दोनों इंद्रियजनितसुखमें कल्लोल करते हुए भी तृप्त न हुए। प्रातःकाल हुआ सबने यथायोग्य नित्य नियम किये। फिर जयकुमारने यह उचित समझा कि सम्राट्

भरतसे मिले विना आगे जाना ठीक नहीं है, शायद कुछ अप्रसन्नता होगी तो दूर होजायगी। यह विचार सर्व सेनाकी रक्षा अपने भाई व हेमांगद आदिके सुपुर्द की तथा सुलोचनाको भी कहा कि हे प्रिये! तू भी यहीं विश्राम कर। मैं बहुत शीघ्र सम्राट्से मिलकर पीछे आता हूं। सुलोचना अंतरंगमें एक मिनट भी जयकुमारको अपनी संगतिसे दूर जाने देना नहीं चहती थी परंतु स्वामीकी आज्ञा मानना पत्नीका धर्म है यह विचारकर चुप रही और अपनी सखियोंके साथ धर्मचर्चामें लगगई। उधर जयकुमार विजयार्द्ध हाथीपर चढ़े कुछ थोड़से आदमियोंको साथ लेकर श्री अयोध्याजी पहुंचे, नगर बाहर तिष्ठकर खबर भेजी। महाराजा भरतकी आज्ञानुसार अर्ककीर्ति आदि बहुत उत्सवके साथ स्वागतार्थ आए और नगरमें लेगए। जयकुमार भरतजीके सभाभवनमें जाता है, देखता है, कि रत्नोंकी विचित्र किरण कलाओंसे शोभित मंडपके नीचे उच्च रत्नमई सिंहासनपर चक्रवर्ती भरत विराजमान हैं। सभामें कार्यकर्ता मंत्री आदि व सभासद अपने २ नियत स्थान पर बहुत विनयके साथ तिष्ठ रहे हैं। जयकुमार भीतर गया और दूरसे साष्टांग नमस्कार किया। यद्यपि जयकुमार सम्यग्दृष्टी और तद्भव मोक्षगामी था तथापि राज्यादि व्यवहारिक कार्योंमें नीतिके अनुसार वर्तना गृहस्थका फर्ज है। इस वर्तनमें व्यवहाररूप विनय करनेसे सम्यक्तमें दोष नहीं है। हां, जो धर्मकी पद्धतिसे कुदेव, कुगुरु व कुशास्त्रको नमन करे तो सम्यक्तमें दोष आता है। व्यवहारमें छोटेको बड़ोंकी विनय करना व्यवहार नीतिमात्र है। आचार्य कहते हैं-

स वा प्रणम्य तीर्थेशं वा स्पृष्ट्वाऽष्टांगैर्धरातलं ।
करं प्रसार्य संभाव्य राज्ञे वासन्नमासनं ॥१२२॥

भाव यह है कि जयकुमारने जैसे तीर्थंकरको अष्टांग नमस्कार करते हैं वैसे पृथ्वी छूकर अष्टांग नमस्कार भरत चक्रेश्वरको किया तब भरत महाराजने हाथ फैलाकर आगे लिया और समीप ही योग्य आसनपर बिठाया ।

भरतजीके अंतःकरणमें जयकुमारसे बहुत ही प्रीति थी । उस प्रेम वश जयकुमारके प्रसन्नार्थ बोले, क्योंजी तुम हमसे अकेले ही मिलने आए अपन साथ नवीनवधूको क्यों न लाए । अच्छा, यह तो कहो कि विवाहका उत्सव भी होगया और हमें वहां क्यों न बुलाया । हमसे इतनी गुप्तता क्यों ! इन प्रेमभरे वचनोंको सुनकर जयने लज्जासे आंखें नीचे कर लीं, और स्वयंवर सम्बन्धी सब हाल कह सुनाया और अतिदीन होकर अपने अपराधकी क्षमा मांगी जो उसने अर्ककीर्तिसे युद्ध ठानकर किया था । महाराजा भरतने कहा—हे मेघेश्वर ! तू जगतमें न्यायमार्गको स्थिर करनेवाला है तू मेरे अपराधी पुत्रको दंड न देता तो कौन देता । हम तेरी न्यायपरायणता और धीरतापर अत्यन्त मुग्ध हैं । तेरे ऐसे वीरात्मासे ही मेरे साम्राज्यकी शोभा है । तू निःशंक रह और अपने कुरुजांगल देशका राज्य कर । सुलोचनाको भी मेरा प्रेम कह और सन्मानमें बहुतसे रत्नादिके आभूषण तथा मनोज्ञ वस्त्रादि जयकुमार तथा सुलोचनाके लिये भेट किये । चक्रवर्तीकी इस कृपासे अति संतुष्ट हो जयकुमार अपनी प्रिया सुलोचनाके प्रेम

रसकी स्मृतिका खिंचा हुआ वहां अधिक न ठहर सका। शीघ्र ही विदा मांग गंगा तट पर आया। सामने देखा कि एक सूखे वृक्षके ऊपर एक कव्वा बैठा हुआ सूर्यकी ओर मुंह किये रो रहा है। इस अपशकुनको देखकर जयकुमार अपनी प्रियाको कोई भयका कारण होगया हो ऐसा जानकर दुःखसे मूर्छित होगया। मूर्छा हटनेपर शकुनशास्त्रीसे पूछा गया तब उसने कहा कि प्रिया सुलोचना सकुशल है। हम लोगोंको जलमें कुछ भय होगा। इतना सुनकर भी प्रिया सुलोचनामें गाढ प्रेम होनके कारण काम-रसमें भीजे हुए जयकुमारने बहुत शीघ्रताके साथ अघटमें हाथीको चला दिया सो हाथी पानीमें तैरकर चलने लगा। वास्तवमें यह कामका उद्रेक एक कषाय भाव है जो प्राणीकी ज्ञान शक्तिको मलीन बना देता है। वह हाथी बे कायदे पानीमें चलते चलते एक गड्ढेमें आ गया, वहां एक मगरमच्छने पकड़ लिया और वह हाथी डगमगाकर डूबने लगा। यह मगरमच्छ वास्तवमें पशु न था किन्तु एक अंतरिणी काली देवीने मगरका रूप धारण-कर जयकुमारको जान बूझकर कष्ट दिया था। उस कष्ट देनेका कारण यह था कि एक दफे एक नागणीके साथ एक नागको समागम करते हुए देखकर जयकुमारके कुछ सिपाहियोंने कंकड़ों-की मार मारी वह क्रुद्ध हो भागा। कुछ दिनोंमें मरकर उसने अंतरिणीकी पर्याय पाई। इस जगह घूमते हुए जयकुमारको देखकर पूर्वकी बात याद करके क्रोधमें आगई और जयकुमारको व उसके आदमियोंको त्रासित करनेके लिये इस तरह उपसर्ग देना आरम्भ किया। जयकुमार हाथीपर चढ़े हैं हाथी घबड़ारहा है,

दूरसे देखने वालोंको जयकुमारके डूबनेका भय होरहा है। यकायक हेमांगद आदि दौड़े और उस गढ़ेमें घुसने लगे। सुलोचनाको अपने पति जयकुमारसे इतना प्रेम था कि वह अपना जीवन पति जीवनके निमित्त ही समझती थी। सुलोचना सच्ची पतिव्रता स्त्रियोंमें शिरोमणि थी। जो एक पत्नीमें गुण होने चाहिये वे सब सुलोचनामें कूट कूट कर भरे थे। शास्त्रकारोंने स्त्रीरत्नमें जो कर्तव्य बताए हैं सो सब इस सुलोचनामें पाए जाते थे। जैसा श्रीअमितिगति आचार्य सुभाषित रत्नसंदोहमें कहते हैं—

यत्कामार्तिं धुनीते सुखमुपचिनुते प्रीतिमाविष्करोति
सत्पात्राहारदानप्रभववरवृषस्यास्तदोषस्य हतुः।
वंशाभ्युद्धारकर्तुर्भवति तनुभवः कारणं कांतकांत-
स्तत्सर्वाभीष्टदात्री प्रवदत न कथं प्रार्थ्यते स्त्रीसुरत्नं॥
भृत्यो मंत्री विपत्तौ भवति रतिविधौ याऽत्र वेश्या
विदग्धा।
लज्जालुर्या विनीता गुरुजनविनता गेहिनी गेहकृत्ये।
भक्त्या पत्यौ सखी या स्वजन परिजने धर्मकर्मैकदक्षा
सात्यक्रोधाल्पपुण्यैः सकलगुणनिधिः प्राप्यते स्त्री
न मर्त्यैः॥ १४॥

भाव यह है कि जो स्त्री कामकी पीड़ाको दूर करती है, सुख प्रदान करती है, प्रेम भावको प्रगट करती है, सत्पात्रोंको दान देना आदि उत्तम निर्दोष धर्मके लाभमें सहायक है, वंशको उद्धार

करने वाले पुत्रको जन्मती है, सुन्दरता व यशकी भाजन है तथा जो सर्व तरह हितको देने वाली है ऐसा स्त्रीरूपी सुरत्न कहो किसतरह आदरने योग्य नहीं है। जो पतिके ऊपर विपत्ति पड़ने पर सेवक तथा मंत्रीपनेका काम देती है, कामसेवनके समय चतुर वेश्याके समान प्रसन्नता प्रदान करती है, प्रशसा सुनकर लज्जायमान हो जाती है, पतिमें भक्ति दर्शाती है, घरके कुटम्बी व पर जनोंमें जो मित्रके समान वर्तती है, धर्म कार्योंके करनेमें बड़ी निपुणता रखती है, बहुत कम क्रोध करती है तथा जो सर्व गुणोंकी खानि है ऐसी स्त्री थोड़े पुण्यवालोंको नहीं मिलती है। जो बड़े पुण्यात्मा है उनहीको प्राप्त होती है। सुलोचनामें ये सब गुण मौजूद थे। अपने पति पर आईहुई विपत्तिको देखकर उसने तुर्त णमोकार मंत्रका स्मरण किया और यह नियम लेलिया कि जबतक पतिका उपसर्ग दूर न होगा तबतक मेरे आहार पानीका त्याग है। आचार्य कहते हैं—

मंत्रमूर्तीन् समाधाय हृदये भक्तितोऽर्हतः।
उपसर्गापसर्गांतं त्यक्ताहारशरीरिका ॥१४७॥
प्राविशत् बहुभिः सार्धं..........

भावार्थ—मंत्र स्वरूप पंचपरमेष्टीको हृदयमें धारणकर श्री अर्हतकी भक्ति चित्तमें रखती हुई, उपसर्ग दूर होने तक आहार व शरीर ममत्वको छोड़ती हुई बहुतसी सखियोंके साथ नदीमें घुस पड़ी और उपसर्ग स्थानके सामने कायोत्सर्ग ध्यानमें लवलीन होगई। उसका मन आत्मध्यानमें लगन था कि यकायक गंगादे-

वीका आसन कम्पायमान हुआ। उसने अवधिज्ञानसे विचार किया और अर्हंतभक्त सुलोचनाके सच्चे सम्यक्तको देख व उसके पूर्व उपकारको यादकर वह देवी तुर्त आई और अपने प्रभावसे कालिकादेवीको भगाकर सर्व उपसर्ग मेट दिया और अपनी विक्रियासे शीघ्र ही एक राजभवन तय्यारकर सिंहासनपर जयकुमार सुलोचनाको भक्तिसे विराजमान कर दिया। सर्व साथियोंको इस उपसर्गको एक पलक मारनेभर कालमें टलते हुए देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ—सब ही जन श्री जिनेन्द्र देवके गुणानुवाद गाने व जिनधर्मकी प्रशंसा करने लगे। गंगादेवी श्री जिनेन्द्रके गुणोंको स्मरणकर सुलोचनाकी बहुत ही प्रशंसा करने लगी। देवी कहती है कि हे सौभाग्यशीले! तू धन्य है जो तूने मोक्षगामी परम पुरुषको अपना पति पाया है। मेरी आत्माका तूने बहुत बड़ा उपकार किया है। पतिव्रते! धर्मरूपी वनमें तूने मुझे मरते समय णमोकार मत्र बड़े ही शांत भावसे सुनाया था उसीके कारण मेरे भाव मंद कषायरूप होगए जिससे मैंने देवायु बांधी और में हिमवन पर्वतके गंगाप्रपात कुन्डमें गंगाकूटपर रहनेवाली गंगादेवी भई हूं। हे शुद्धलोचने! मेरे साथ जो तूने उपकार किया है उसका जितना ऋण मेरे ऊपर चढ़ा है उसको मैं किसी तरह चुका नहीं सक्ती हूं। तेरी सदा जय हो तू परम सुखका लाभ करे। देवीके ऐसे सार वचनरूपी पुष्पोंकी सुगंधसे जयकुमार सुलोचना दोनों गदगद होगए—सज्जनतासे पूर्ण देवीके शुभभावोंकी प्रशंसा करने लगें। वास्तवमें जो सज्जन होते हैं वे अपने उपकारको कभी भूलते नहीं है। उनको प्रत्युपकार करनेकी सदा भावना लगी रहती है। जयकुमारने देवीके संक्षेप कथनसे

णमोकार मंत्र दानकी कथाको विस्तारसे नहीं समझा तब सुलोच-
नासे पूछा कि हे प्रिये। यह बात क्या है सो ठीक २ कह।
सुलोचना कहती है कि हे स्वामी! इस देवीका जीव पूर्व जन्ममें
एक राजपुत्री था। विन्ध्याचल पर्वतके समीप विंध्यपुरीका राजा
विंध्यकेतु था, उसकी रानी प्रियंगुश्री थी। उन दोनोंके एक विंध्य-
श्री कन्या थी। मातापिताने इसे मेरे पिता राजा अकंपनको इस-
लिये यह कन्या सौंपदी कि यह मेरे साथ अनेक विद्याएं व गुण
सीख लेवे। ऐसा ही आचार्य कहते हैं—

**विंध्यश्रीस्तां पिता तस्याः शिक्षितुं सकलान् गुणान्
मया सह मयि स्नेहान्महीशस्य समर्थयत् ॥ १५४**

भावार्थ—उसके पिताने मेरेमें स्नेह होनेके कारण अपनी
कन्या विंध्यश्रीको मेरे पिताको सौंप दिया कि वह मेरे साथ
गुणोंको सीख जाय। पाठकगण इस बातसे इस शिक्षाको ध्यानमें
लेवेंगे कि कन्याओंको योग्य और शिक्षित बनानेमें उनके पिता
कितना अधिक उद्यम करते थे। उस कालमें सब ही गृहस्थ श्री
ऋषभदेव भगवानका अनुकरण करते थे। ऋषभदेवजीने अपनी
पुत्री ब्राह्मी सुन्दरीको स्वयं अनेक विद्याओंसे विभूषित करके
जगतको शिक्षा देदी थी कि संतानको पढ़ाकर गुणवान बनाना
मातापिताका मुख्य धर्म है। इसपर भी पुत्रोंकी अपेक्षा पुत्रियोंको
पढ़ाना और भी अधिक आवश्यक है, क्योंकि उनके पास हर-
एक बालक बालिका ५-६ वर्ष तक शिक्षाके लिये आधीन रहता
है। यदि माताएं मूर्खा हों तो बालक मूर्ख और यदि चतुर व

शिक्षिता हों तो बालक चतुर और सुटेवी बनते हैं। महाराज अकं-पनके पास सुलोचनाको अनेक कलाओंके सिखानेका बहुत बढ़िया प्रबन्ध था। दूसरे सुलोचनाका चरित्र शुरूसे ही नमूनेदार था इसी लिये विंध्यकेतुने विंध्यश्रीको सुलोचनाकी संगतिमें रहकर विद्या लाभ करनेका उपाय कर दिया।

सुलोचना कहती है कि वह कन्या मेरे साथ विद्या लाभ करती, मेरे साथ खेलती, खाती, सोती हुई रहती थी। एक दिन मेरे साथ वसंततिलक वनमें खेलनेके लिये गई। यकायक एक झाड़ीमें वह फलोंकी सुगंध ले रही थी कि उसका पग एक सर्पके ऊपर पड़ गया—सर्पको क्रोध आगया और उसने विंध्यश्रीको डस लिया। वह घबड़ा गई, कुछ चिल्लाई, उसके करुणाजनक शब्दोंको सुनकर मैं उसके निकट गई और उसके प्राण नहीं ठहर सके ऐसा निश्चय कर मैंने शीघ्र ही बड़े ही भावसे और मिष्ठतासे महामंत्ररूप इस णमोकार मंत्रको सुनाना शुरू किया। उसका उपयोग जो इस मंत्रके शब्दोंमें लगा तो कषायोंका जोर घट गया—शुभ लेश्या होगई। अभीतक आयुकर्मका बंध नहीं किया था सो अब देव आयु बांध कर वह मरी और गंगादेवी उत्पन हुई। हे स्वामिन्! णमोकार मंत्रकी महिमा अगाध है। कोई वच-नोंसे कह नहीं सक्ता। वास्तवमें यह ३५ अक्षरका मत्र परमात्मा और अंतरात्माके गुणोंका स्मरणरूप है। श्री अरहंत और सिद्ध परमात्मा हैं। आचार्य उपाध्याय साधु अंतरात्मा हैं। सशरीर जीवन्मुक्त परमात्माको अरहंत कहते, व शरीर रहित अमूर्तिक शुद्ध आत्माको सिद्ध कहते हैं। ये अरहंत सिद्ध सर्वज्ञ वीतराग आनन्द

मई हैं। इनमें क्रोध, मान, माया, लोभका अंश भी नहीं झलकता है। न इनको भूख प्यास गर्मी सर्दी रोग शोककी बाधा कभी होती है। ये संसार अवस्थासे भिन्न परमानन्दमई निराकुल अवस्थामें रहते हैं, जिन्होंने अपने आत्माके स्वभावको जैसा उसका स्वभाव है वैसा ही जाना और माना है, उसे सामान्य विशेष गुणोंका समूह सत् पदार्थ जाना है, उसमें कर्मोदयके निमित्तसे होनेवाले भावोंको उसके निज स्वाभाविक भावोंसे अलग जाना है, उसमें एक विलक्षण अतीन्द्रिय सुख है जो इन्द्रियजनित सुखसे भिन्न परम शांतस्वरूप है ऐसा निश्चय किया है सो अंतरात्मा है। ऐसा अंतरात्मा जब आत्माको स्वाधीन बनानेके लिये आत्मध्यानका विशेष अभ्यास करनेके लिये गृह व परिग्रहको त्याग नग्न दिगम्बर होजाता है तब उनको साधु कहते हैं ऐसे साधु जीवरक्षाके लिये एक मोर पिच्छिका रखते, शौचके लिये काष्ठ कमंडलमें उष्ण जल रखते और आवश्यकतानुसार शास्त्र रखते हैं

• नहीं पाया जाता है। ये साधु अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रह त्याग व्रतोंको पूर्ण रूपसे पालते हैं। ये साधु रात्रिमें न चलते न बोलते हैं, दिनमें एक ही दफे विचारशील धर्मात्मा गृहस्थके द्वारा भोजन पान लेकर संतुष्ट रहते हैं। इनही साधुओंके जो गुरु, दीक्षा, शिक्षा देनेवाले होते हैं, उनको आचार्य्य कहते हैं। जो उनमें विशेष विद्वान् होते हैं वे अन्य साधुओंको अनेक शास्त्रोंका ज्ञान कराते हैं, उनको उपाध्याय कहते हैं। इन दो पदवियोंके सिवाय शेष मुनियोंको साधु कहते हैं। इसतरह इस णमोकार मंत्रमें इन पांच महान पद

धारकोंको भाव सहित उनके गुणोंमें अनुराग रूप नमस्कार किया गया है। ये पांचों पद निज आत्माके स्वभावको स्मरण करानेवाले हैं इसलिये इनके पढनेसे, जपनेसे, इनका अर्थ विचारनेसे परिणामोंसे ही कषाय कालिमा मंद हो जाती है। मंद कषायसे ही जीव पुण्य कर्मोंको बांध लेता है। इसलिये इस णमोकार मंत्र द्वारा अकथनीय लाभ होते हैं। परमप्रेमके भारसे नम्रीभूत हो सुलोचना इस तरह **णमोकार** मंत्र पढती है:-

णमो अरहंताणं— ७ अक्षर, अरहंतोंको नमस्कार हो।
णमो सिद्धाणं— ५ ,, सिद्धोंको नमस्कार हो।
णमो आइरियाणं— ७ ,, आचार्योंको नमस्कार हो।
णमो उवज्झायाणं— ७ ,, उपाध्यायोंको नमस्कार हो।
णमो लोए सव्वसाहूणं—९ ,, लोकमें सर्व साधुओंको नमस्कार हो।

कुल ३५ अक्षर

मित्र! यह वही गंगादेवी है जिसने मेरे तुच्छ उपकारको स्मरणकर इस समय हमारे साथ बड़ा ही प्रशंसनीय प्रत्युपकार किया है। जयकुमार बारबार गंगादेवीकी सज्जनताकी प्रशंसा करने लगे। देवीने अपना मस्तक लज्जासे नीचा कर लिया और कुछ देर पीछे प्रणामकर विदा ली। तब भरत चक्रवर्तीने जो सुलोचनाके अर्थ पदार्थ भेजे थे उनको जयकुमारने सुलोचनाकी भेट किये। इस भेट रूप सत्कारसे सुलोचनाको बहुत ही संतोष हुआ। और उसका भौतिक प्रेम जो मोहके उदयका दिखाव था और भी अधिक बढ़ गया। जय भी सुलो-

चनामें कमलमें भ्रमरवत् आसक्त था। आज रात्रिको डेरेमें ही प्रिया सहित विश्राम करके दंपतिके क्षणिक सुखसे तृप्ति पानेका यत्न करने लगा—इस यत्नमें सारी रात बीत गई। परन्तु तृप्ति नहीं हुई—उधर रात्रिने जय और सुलोचनाके चित्तको आकुलताके प्रपंचसे छुटानेके लिये विदा लेनेके लिये ज्यों ही मुंह मोड़ा त्यों ही ये दोनों प्रभात मित्रके आगमनको जान परस्पर क्रीड़ा त्याग पृथक् हो गए और उष्ण जलसे कुछ स्नानकर स्वच्छ वस्त्र बदल अपने २ धर्मध्यानके स्थानमें जाकर सामायिक-की क्रियामें लवलीन होगये। वास्तवमें जो चतुर होते हैं वे समय समयके कर्तव्यमें चूकते नहीं है। प्रातःकाल सर्वोच्च काल है। इस कालमें मन प्रौढ़, स्वच्छ व शांत रहता है। इसलिये धर्म-ध्यान करनेका यह बड़ा ही उपयुक्त समय है। इसीसे इसको सामायिककाल कहते हैं। इस कालमें जो प्रमादी रहते वे अमूल्य रत्नको फेंक देते हैं। रागद्वेष भावोंको हटाकर आत्माको अपूर्व शांतिमें उपयोग लगानेवाली यह सामायिककी क्रिया है। इस क्रियामें अनुरक्त गृहस्थ मुनितुल्य ध्यानी होजाता है। वह सामायिक कर्ता अपने शरीरकी परिग्रहके सिवाय अन्य सर्व परि-ग्रहका व सर्व पापोंका उतनी देरके लिये त्यागी हो जाता है। वह चित्तको निस्पृहकर उसमें आत्माके पवित्र गुणोंकी स्मृतिको विराजमान कर देता है। इसी प्रशस्त सामायिक क्रियामें जय और सुलोचना लीन होकर ध्यानमग्न हो गये।

छठा अध्याय ।

आदर्श गार्हस्थ्य जीवन ।

जयकुमारने सूर्य्यके उदयको देख अपने निज नगरमें शीघ्र पहुंचनेका निश्चय किया । प्रातःकालकी नित्य क्रिया पूजापाठादि समाप्तकर व भोजन ले सर्व संघको प्रयाणकी आज्ञा करदी । कुछ कालमें हस्तनागपुर पहुंच गए। इनके आगमनकी खबर पाते ही नगर सजाया गया। प्रजाको इनके वियोगसे बड़ी आकुलता थी अब इनका संयोग जान जैसा हर्षका झलकाव मनमें हुआ था वैसा प्रजाने अपनी क्रिया द्वारा बाहरमें दिखा दिया । जगह २ बाजे बजने लगे, नगरके मुख्य २ लोग, मंत्री, पुरोहित तथा मंगलरूपिणी स्त्रियोंके साथ आगेसे ही स्वागतके लिये आए और पूजाके शेषाक्षतोंको आगेकर खड़े हो अनेक प्रकार आशीर्वाद दी । जैसा कि आचार्य्य कहते हैं-

पुरोहितैः पुरंध्रीभिर्मंत्रिभिर्वैश्यविश्रुतैः ।
दत्तशेषः पुरः स्थित्वा साशीर्वादैः समुत्सुकैः ॥१७७

भाव यह है कि पुरोहितादिने बड़ी भक्तिसे पूजाके शेषाक्षत प्रदानकर आगे खड़े हो अनेक तरहके आशीर्वाद दिये । नगरमें जाकर जयकुमारने अपने आगमके हर्षमें एक बड़ी पूजा रचवाई-जिससे कई दिनों तक नगरमें बड़ी भारी धर्मप्रभावना हुई । वास्तवमें महान पूजा भी धार्मिक भावसे की हुई जैन धर्मकी

प्रभावना करनेवाली है। जयकुमारका गाढप्रेम सुलोचनामें था। इसके और भी स्त्रियें थीं उन सबमें मुख्य पट्टरानीका पद जयने सुलोचनाको प्रदान किया। उस समय बहुतसी भेटे दीं। सुलोचनाके भाई हेमांगदादिको बड़े स्नेहसे कुछ कालतक रक्खा और उनके साथ अनेक प्रकारके लौकिक आनन्द मनाने लगा। जैसा आचार्य कहते हैं:-

नृत्यगीतिसुखालापैर्वारणारोहणादिभिः ।
वनवापीसरः क्रीड़ा कंदुकादिविनोदनैः ॥ १८३ ॥

भाव यह है कि कभी उनके साथ मंगलीक नृत्य देखता व गान सुनता था, कभी सुखसे बैठ अनेक वार्तालाप करता था कभी हाथी घोड़े आदि पर चढ़कर साथ साथ सैर करता था, कभी वनमें घूमता था, कभी वापी या सरोवरमें बैठ जलक्रीड़ा करता था, तथा कभी भूमिपर गेंद खेलने आदिके विनोद करता था। गेंद खेलनेकी प्रथा बड़ी प्राचीन है, इसके द्वारा खुले मैदानमें खेलनेसे शरीरको व्यायामका लाभ भी होजाता है। कुछ काल पीछे अनेक वस्तुओंकी भेट दे हेमांगद आदिकोंको बनारस भेज दिया।

थोड़े समयके वीतनेपर राजा अकंपन संसारके असार स्वरूप को चिन्तवनकर संसारसे विरक्त होगए और यह विचार किया कि इस मनुष्य जन्मसे मोक्ष पुरुषार्थकी सिद्धि कर लेनी चाहिये जिससे यह आत्मा सदाके लिये स्वतंत्र और आनन्दमय हो जावे और कर्म-कलंकको मेटकर शुद्ध होजावे, तब इस संसारमें गर्भ जन्म

जरा मरणके अनिवार्य्य दुःखोंसे छुटकारा हो जावे । जैसे सूर्यका प्रकाश फैला हुआ संध्याके समय संकुचित होजाता है वैसे अकंपनका सर्व रागभाव जो स्त्री, पुत्र, मित्र, धन, धान्य, राज्य आदिमें व्याप रहा था सो सब संकुचित हो मोक्ष ललनाके ग्रहणकी तरफ एकत्र होगया । जगतकी अथिर पर्यायोंका ममत्व मिट गया, वैराग्य भावके दृढ़ होते ही जो पृथ्वीका राज्य भूषणरूप था वह अब बड़ा भारी कांटेदार लकड़ीका भार मालूम होने लगा । उसको सिरसे उतारकर हलका होनेके लिये राजा [illegible]नने अपने ज्येष्ठ पुत्र हेमांगदको बुलाया और सर्व मंत्रीमंडलके सन्मुख विधि सहित राज्यभार सौंप राज्यका स्वामी बना दिया । अकंपनने सर्वसे क्षमा मांगी, गृह कारावाससे छूटकर चलने लगा, उस समय सुप्रभा रानीके भी चित्तको वैराग्यने आघेरा और वह भी सर्वसे क्षमा मांग आत्मकल्याणके लिये घर छोड़ बाहर निकली। राजा अकंपन और सुप्रभा जब हर्षमें भरे दीक्षा रत्नको श्री रिषभदेवके समवशरणमें ग्रहण करनेको जारहे हैं तब सारी प्रजा जिसका ममत्व संसारमें था इन चंद्र सूर्य दोनोंकी विदायी होनेसे महान शोकरूपी अंधकारमें व्याप्त होगई । जैसे कुमुदनीका वन मुरझा जाय वैसे मुरझा गई । काशीनगरीमें सर्वत्र अशुभ उदासीने घर कर लिया । शुभ उदासी तो इन दोनों वीर आत्माओंके साथ चल दी । नगरमें अशुभ विचारी रह गई । उसने सब नगरवासियोंको छा लिया । अकंपन और सुप्रभा नगरमें होकर जा रहे हैं । जगह जगह रुदनके शब्द सुनाई पड़रहे हैं । नगरके ऐसे विलापको देखकर अकंपन अपनी शुभ उदासी देवीको आज्ञा

देते हैं कि वह अपनी कृपा कटाक्षसे इस अशुभ उदासीके असरको कम करे। कुछ धर्मात्मा बुद्धिमान लोग शास्त्रोंके रहस्यके अनुभवी यत्रतत्र लोगोंको समझाते हैं। उनको संसारकी असारता और मोक्षकी सारताका उपदेश करते हैं–इस उपदेशके प्रभावसे अशुभ उदासीका बल घट जाता है और संतोष व धैर्यका बल बढ़ जाता है। इस तरह संसारके नाटकको देखते हुए अकंपन और सुप्रभा श्री रिषभदेवके समवशरणमें जाते हैं। भली प्रकार स्तुति व पूजाकर सभामें बैठ जाते हैं और शांत मन हो धर्मोपदेशपान करते हैं। भगवानकी दिव्यध्वनिमें यह प्रगट होता है कि यह संसार छः द्रव्योंका नाटक है, जीव पुद्गल दो द्रव्य क्रियावान हैं, धर्म अधर्म आकाश और काल क्रिया रहित हैं तो भी उन दोनोंकी क्रियामें सहकारी हैं। जीव पुद्गलका सम्बन्ध अनादि कालसे होरहा है। यद्यपि जीव ज्ञाता दृष्टा शुद्ध अमूर्तिक राग द्वेष मोहादि भावोंसे रहित अविनाशी निर्विकार है तथापि पुद्गलकी संगतिमें पडा हुआ अपना स्वभाव छिपाए हुए है–इसकी अवस्था कषाय कालिमासे व्याप्त है। इसीसे ज्ञान दर्शनकी शक्ति भी अल्प प्रगट है तथा जो कुछ प्रगट भी है वह राग द्वेष मोहके कारण विपरीत कार्य्यकी तरफ झुक रही है। अज्ञान, मिथ्यात्व और असंयम भावसे घिरा हुआ यह जीव अपने स्वभावको अपनी ज्ञाननिधिको अपनी अतीन्द्रिय सुख सम्पत्तिको भूल गया है–भूलमें पड़कर इंद्रियोंके भोगसे उत्पन्न अतृप्तिकारी सुखोंके लिये रातदिन लालायित रहता है–विषय भोगकी तृष्णाकी तृषासे आकुल हो मृगोंकी तरह पुनःपुनः

नाना विषयोंमें दौड़ दौड़ कर जाता है, सुखकी आशासे जाता है परंतु उल्टा दुःख ही पाता है। इस जीवको इस दुःखभरी अवस्थासे अपनी रक्षा करनेके लिये सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यग्चारित्रमई रत्नत्रय धर्मकी शरण ग्रहण करनी चाहिये। मैं शुद्ध चैतन्यरूप हूं यह श्रद्धा दृढ़कर अपनेको सर्व अन्य जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश कालसे भिन्न जान कर अपने ही आत्माके आनन्दमई बागमें कल्लोल करनेके लिये सर्व परिग्रह त्याग निर्ग्रन्थ होजाना चाहिये और दृढ़तर पुरुषार्थके साथ धर्मध्यान शुक्लध्यान करके कर्म बंधनोंको काट डालना चाहिये। यद्यपि अपने शुद्ध उपयोगमें रमण करना ही सम्यग्चारित्र है तथापि उसके बाहरी साधकको भी सहायक होनेसे सम्यग्चारित्र कहते हैं। इसी लिये साधु मार्गमें चलकर रात दिन आत्मानुभव द्वारा स्वस्वरूप वेदन कर स्वसुखका लाभ लेते हुए अपने आत्माको कर्म लेपसे अलग करना चाहिये। जो भव्यजीव कर्म शत्रुओंपर विजय पानेके लिये दीक्षारूपी लोह वस्त्र धारण करते हैं और सर्व वस्त्रादि आडम्बरको त्याग करते हैं तथा ध्यानके धनुषको पकड़कर वीतराग भावरूपी वाण चलाते हैं वे ही मोह शत्रुको नाश कर डालते हैं। मोहके नाश होते ही अन्य कर्मोंका बल क्षीण होजाता है। वे भी थोड़े समयमें ही विदा होजाते हैं और यह वीर विजयलक्ष्मीको पाकर मुक्ति ललनाका प्रिय और माननीय स्वामी होजाता है। तब अनंतकालके लिये कृत्यकृत्य, सुखी और शुद्ध अपने स्वभावमें रहता है। विभाव कालिमा मिट जाती है। पूजकसे पूज्य, ध्यातासे ध्येय, नमनकर्तासे नमन योग्य होजाता है।

इस अमृत वाणीको सुनकर अकंपन उठते हैं, श्रीजिनेन्द्रकी वार वार स्तुति करके निर्ग्रंथ पद धारनेका भाव प्रगटकर वृषभसेन गणधरके निकट जाते हैं और सर्व परिग्रह त्याग केशोंका लोंचकर बड़े प्रसन्न मनसे महाव्रत धार मुनि हो ध्यानमें मग्न हो जाते हैं।

सुप्रभा रानी अपने स्वामीको मोक्ष नगरके लिये चारित्र रूपी हाथीपर चढा देख स्वयं भी वहां पहुंचनेके लिये उत्कंठित होती है और ब्रह्मी नामकी आर्यिकाओंमें मुख्य गुराणीके निकट जा नमस्कार करके आर्यिकाके व्रतोंकी याचना करती है। गुराणीजीकी आज्ञा पाकर सर्व वस्त्राभूषण उतारकर केवल रुईकी एक सफेद सारी पहनने ओढनेको रख लेती है, अपने हाथोंसे केशोंका लोंच करती है। श्राविकाके उत्कृष्ट ग्यारहवीं प्रतिमाके व्रतोंको धारण कर लेती है। अन्य आर्यिकाओंके साथ भिक्षा-वृत्तिसे भोजनार्थ जाती, जो कोई भक्तिसे प्रतिग्रहण करता वहां बैठकर अपने हाथमें रक्खे हुए शुद्ध भोजनपानको २४ घंटेमें मात्र एक वार लेकर संतुष्ट रहती और रातदिन स्वानुभवके रसका पान करती और अवसर पाकर अन्य स्त्री समाजको धर्मोपदेशका पान कराती थी। बहुत कालतक मुनि अंकपन और आर्यिका सुप्रभाने अपने२ चारित्रकी रक्षा की और मोक्ष नगरमें पहुंचनेके लिये मोक्ष मार्गको तय किया।

क्योंकि अकंपन वज्रवृषभनाराच संहननके धारी, अपूर्व शक्तिशाली निश्चल आत्मध्यानी थे इसलिये धर्मध्यानसे शुक्ल-ध्यानमें आरूढ़ होकर क्षपकश्रेणी द्वारा मोहका क्षयकर फिर तीन अन्य घातिया कर्मोंका नाशकर केवलज्ञान रूपी दिव्य नेत्रको

पाकर अरहंत परमात्मा होगए। और आयु पर्यंत धर्मोपदेश देकर अन्तमें शरीरोंकी कांचली त्याग शुद्ध निरंजन सिद्ध परमात्मा होकर सिद्ध लोकमें अनन्तकालके लिये तिष्ठते हुए।

स्त्रियोंको उत्तम संहनन नहीं होता तथा वे पूर्ण नग्न हो महाव्रतोंको नहीं पाल सक्तीं इसलिये उस स्त्री पर्यायसे सीधी सिद्ध अवस्था नहीं पासक्तीं। तौ भी सुप्रभाने कठिन तप करके स्त्रीलिंग छेद स्वर्गमें देवपद पाया। आगामी कालमें मोक्षपद अवश्य होगा।

धर्म इस जीवका परम मित्र है। यही इस जीवकी उन्नति कराकर उच्चतर और उच्चतम पदोंमें प्रतिष्ठित कर देता है।

उधर हास्तनागपुरमें जयकुमार सुलोचना सहित प्रजाका धर्म व नीतिसे पालन करते हुए गार्हस्थके सुखोंका उपभोग करते हुए काल विताने लगे। इन दोनोंमें जो प्रेम था उसका वर्णन करना ही असंभव है। आचार्य कहते हैं—

प्रमाणकालभावेभ्यो यद्रतेः समता तयोः।
ततः संभोगशृंगारावारापारांत गौ हि तौ ॥२१२॥

भाव यह है कि अंग प्रमाण, आयु और भावोंसे दोनोंमें जो रतिभावकी समानता थी इसलिये वे दोनों भोग और श्रृंगारके समुद्रके पार पहुंच गये थे अर्थात् कामभोग विलास और श्रृंगाररसमें इन दोनोंने अंतिम सीमा तक पहुंच पाली थी। यद्यपि जयकुमार पांचों इंद्रियोंके भोगोंको रातदिन न्यायपूर्वक भोगता हुआ यह चाहता था कि संतोष प्राप्त हो परन्तु इंद्रिय भोगोंसे

अन्ततक कोई तृप्त हुआ नहीं न होसक्ता है, इसलिये जयकुमारकी तृषा सदा बनी ही रहती थी। श्री समन्तभद्राचार्य ने स्वयंभूस्तोत्रमें बहुत ठीक कहा है:-

शतह्रदोन्मेषचलं हि सौख्यं।
तृष्णामयाप्यायनमात्रहेतुः॥
तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं।
तापस्तदायासयतीत्यवादीः॥ १३॥

भाव यह है कि इंद्रियोंका सुख बिजलीके चमत्कारवत चंचल, क्षणभंगुर है तथा तृष्णा रूपी रोगके मात्र बढानेका ही कारण है। तृष्णाकी वृद्धि मानवको निरंतर संताप पैदा करती है वह ताप जगतके प्राणियोंको अनेक दुःख परंपरामें क्लेशित रखता है ऐसा हे भगवान संभवनाथस्वामी आपने उपदेश किया है। श्री गुणभद्राचार्य भी कहते हैं—

एवं सुखानि तनुजान्यनुभूय तौ च।
नैवेयतुश्चिररतेऽप्यभिलाषकोटिं॥
धिक्कष्टमिष्टविषयोत्थसुखं सुखाय।
तद्धीतविश्वविषयाय बुधा यतध्वं॥२१९॥

भाव यह है कि इस तरह जयकुमार सुलोचनाने शरीर सम्बन्धी सुखोंको चिर कालतक भोगा तौभी वे अपनी करोड़ों इच्छाओंकी सन्ततिको दूर नहीं कर सके। इष्ट इंद्रियोंके भोगोंसे उत्पन्न सुखको धिक्कार हो जिससे कष्ट बढ़ता ही जाता है, इसलिये बुद्धिवानोंको इंद्रिय विषयोंके स्वादसे रहित अतींद्रिय आत्मीक

सुखके लिये ही यतन करना चाहिये । विना आत्मीक आनन्दके अमृतमई जलका पान किये विषय सुखका दाह कभी शांत नहीं होसक्ता । एक दिन जयकुमार राज्यभवनके ऊपर सुलोचनाके साथ आनन्दमें मग्न बैठे थे । यकायक दूरसे दो विद्याधरोंको जाते देखकर जयकुमार " हा मेरी प्रभावती " ऐसा शब्द कह मूर्छित होगया । इतनेहीमें एक कबूतरके जोड़ेको देख " हा मेरा रतिवर " ऐसा शब्द कह सुलोचना भी मुर्छित होगई । जयकुमारको अन्य स्त्रियोंने शीतलोपचार कर सचेत किया और श्रीमती आदि स्त्रियें दोनोंको मायाचारी जानकर ताना देने लगीं कि यह कैसा प्रेम और यह कैसा खेल ।

इन दोनोंको जातिस्मरण हो आया था । पूर्व जन्मका चरित्र याद आगया था । थोड़ी देरबाद सम्यक्तके प्रभावसे अवधिज्ञान भी प्रकट होगया । इन दोनोंको अपने पिछले भवोंकी बातें सब दीख गईं । और दोनों समझ गए कि किस लिये ये शब्द कहे गए थे । सर्व स्त्रियोंको लाभ व कौतूहलके अर्थ जयकुमारने सुलोचनाको कहा कि हे प्रिये अपने पूर्व भवोंका कुछ चरित्र वर्णनकर । सुलोचनाने अपने पूर्व भवोंको कहते हुए विशेष करके यह बात कही कि हम दोनों एक सेठके घर पूर्व जन्ममें रतिवर कबूतर और रतिषेणा नामकी कबूतरी थे हम दोनोंमें बड़ा प्रेम था । कबूतरोंके जोड़ेको देखकर हमें पिछली बात याद आगई थी इससे मेरे मुखसे 'हा रतिवर !' यह शब्द निकल पड़ा था तथा एक भवमें हम दोनों हिरण्य वर्मा विद्याधर तथा प्रभावती विद्याधरी थे । तब भी हम दोनोंमें बड़ा प्रेम था । हे प्रीतम

आपके मुखसे हा प्रभावती! यह शब्द उस जन्मके चरित्रकी स्मृतिसे निकल पड़ा था। इनके पूर्व जन्मोंके चरित्रको सुनकर सबको धर्ममें अतिशय प्रेम पैदा होगया क्योंकि धर्महीके प्रतापसे यह प्राणी दुर्गतिसे बचता है और शुभगतिका लाभ करता है। वास्तवमें पूर्व जन्मके संस्कार प्रायः कई भवोंतक चले जाते हैं। गाढ़ प्रीतिके भाजन जन्म जन्ममें मिल जाते हैं। ऐसे ही गाढ़ द्वेषके भाजन परस्पर जन्म जन्ममें वैर दिखाते हैं। शुद्ध प्रीतिके भाजन परस्पर उपकार करते हैं और दूसरेके कल्याणमें सहाई हो जाते हैं। इसलिये बुद्धिमानोंको जगतके जीवोंके साथ शुद्धप्रेम भावसे वर्ताव करना चाहिये। वैरभावको कभी भी स्थान न देना चाहिये।

जयकुमारको सम्यग्दर्शनके प्रभावसे तथा पुण्योदयके कारण विद्याधरकी पर्यायमें जो प्रज्ञप्ति आदि विद्याएं सिद्ध थीं सो सब फिर स्फुरायमान हो गईं।

इन विद्याओंके प्रभावसे यद्यपि भूमिगोचरी था तथापि विद्याधरोंके समान आकाश द्वारा विमानोंसे इधर उधर जा सक्ता था।

वास्तवमें जयकुमार सुलोचनाका बड़ा ही शुद्ध अकृत्रिम प्रेम सदृश प्रेम था। यद्यपि जयकुमार सुलोचनाका यथोचित आदर करते थे तथापि सुलोचना सदा अपनेको जयकुमारकी सेविका व भक्त समझती थी और अपने प्राणवल्लभके संतोषके लिये अपनी शक्ति भर कोई बात उठा नहीं रखती थी। ये दोनों ग्रहस्थके सुख धर्म पूर्वक भोगते हुए अपने जीवनके समयको जो क्षण क्षण हाथके चुल्लूमें रक्खे हुए जलके समान वीतता जाता है और

आयुकर्मकी स्थितिको समाप्त करता जाता है बीतता हुआ न जान सके। सच है यह प्राणी साताकारी सम्बन्धोंमें जब लगा रहता है तब अपनी जीवन यात्रा कितनी बाकी है इसका खयाल नहीं करता। हां असाताकारी दुःखोंकी अवस्थामें अवश्य याद करता है कि अब इस शेष जीवनको किसतरह काटूंगा।

ये दोनों आदर्श गृहस्थ धर्म, अर्थ, काम तीनों पुरुषार्थोंको अविरोध रूपसे साधन करते थे। इन तीनोंमें भी इन्हें धर्म साधन अतिशय प्रिय था इसलिये धार्मिक कार्योंको अर्थ व कामके पीछे कभी भी कम नहीं करते थे। ये दोनों गाढ सम्यग्दृष्टी थे। वीतराग देव गुरु व धर्मको वीतराग भावके ही लिये सेवन करते थे। संसार शरीर भोगोंसे उदासीन भाव रखते थे। श्रद्धानमें संसारको असार, अवासयोग्य, शरीरको महा अपवित्र, रोगघर तथा नाशवन्त और भोगोंको अतृप्तिकारी, पराधीन, तृष्णावर्धक तथा कर्म बंधके कारण जानते थे। तथा सदा यह भावना भाते थे कि कब कषायरूपी शत्रुओंको विजय करके परम वीतराग होकर अपने स्वरूपमें ही सदा लवलीन रहूं। श्रीजिनेन्द्रसे भी प्रार्थना रूप भक्तिमें यही कामना दर्शाते थे कि हे प्रभु! आपके सदृश होना चाहते हैं। आप परमसुखी, परमज्ञानी, परमशांत तथा परम निराबाध हैं। हे प्रभु! हम भी आप ही के समान होना चाहते हैं।

ये इस बातका भी दृढ़ श्रृद्धान रखते थे कि हमको सांसारिक सुख या दुःख हमारे ही बांधे हुए पुण्य पाप कर्मोंके उदयसे होते हैं। पुण्य कर्मका उदय होता है तब उत्तम कुल, निरोग

देह, लक्ष्मी, रूप, बल, अधिकार, पुत्र, पौत्र, सुयश आदि सब हो जाते हैं और जब पाप कर्मका उदय होता है तब अयोग्य कुल, सरोगदेह, दरिद्रता, कुरूपता, निर्बलता, दीनता, पुत्र पौत्र विहीनता, अपयश आदि सब कुछ आसातारूप ही सम्बन्ध प्राप्त होते हैं। इन पुण्य पापकर्मोंको कोई न देता है और न कोई हरता है। अपने ही शुभ भावोंसे यह जीव पुण्य बांधता है और अपने ही अशुभ भावोंसे यह जीव पाप बांधता है। इस जीवके वीतराग भावोंमें भक्ति करते हुए अवश्य यह शक्ति है कि यह उन वीतराग भावोंकी रुचि व प्रेमके प्रभावसे पिछले कालमें बांधे हुए पापकर्मकी शक्ति घटाकर बहुत हीन करदे तथा पुण्य कर्मकी शक्ति बढ़ाकर बहुत अधिक करदे। चतुर गृहस्थ लोग इसी लिये अपने विशुद्ध भावोंकी प्राप्तिके लिये नित्य प्रति ही धर्मका सेवन करते हैं और जब यह शंका होती है कि हम गृहस्थोंपर कोई संकट आनेवाला है तब विशेष धर्म साधन करते हैं इसी लिये कि जिस पापकर्मके उदयसे दुःख होगा वह पापकर्म शमन होजावे या हीन होजावे तथा पुण्य कर्मका बल बढ़ जावे—ऐसा करते हुए भी उनके यह निदानभाव नहीं होता है कि हम यदि अमुक धर्म किया करेंगे तो अमुक संकट टाल ही देंगे। वे उदासीन भावसे विशेष धर्म साधन करते हैं कि यदि पापकर्म घटना हो तो घट जावेगा। यदि तीव्र निकाचित बंध हो, और वह न घटे तो वे ज्ञानी गृहस्थ कुछ भी खेद नहीं मानते वे मात्र अपना कर्तव्य करते हैं। दुःख घटो व न घटो, सुख हो व न हो। वे कोई प्रकारका लेनदेनका सौदा धार्मिक क्रियाओंमें

नहीं करते हैं। संकट आनेकी शंकामें विशेष धर्म साधन करते हुए बहुतसे जीवोंके बहुत करके पापकर्म घट जाता है दुःख कम होजाता है। ज्ञानी गृहस्थ कर्म सिद्धांतके नियमोंको जानते हैं, उसीके अनुसार वे चलते हैं दुःख घटो व न घटो, सुख बढ़ो व न बढ़ो। जैसे चतुर वैद्य अपनी प्रकृतिकी परीक्षाकर कदाचित रोगका कारण मालूम होनेपर विशेष उपाय करके औषधि पान करता व खानपानका विचार रखता है। ऐसी सम्हाल रखते हुए यदि रोग न बढ़ा शांत होगया तो भी ठीक, यदि न मिटा तो भी ठीक, चतुर वैद्य किसी प्रकारका खेद नहीं करता है। यही अवस्था ज्ञानी सम्यग्दृष्टी गृहस्थियोंकी होती है। इसी लिये गृहस्थी लोग हरएक नये कार्यके प्रारम्भमें मंगलमई पंच परमेष्ठीकी विशेष पूजा करते हैं। नई दुकान खोलते हुए, नया कागज शुरू करते हुए, विशेष कामके लिये परदेश जाते हुए, पुत्रके जन्मपर, पुत्रके विवाह होनेपर आदि आदि सब ही गृहस्थके कार्योंकी आदिमें श्री जिनेन्द्रकी अर्चा भाव सहित करते हैं। गृहस्थी लोग ज्योतिष विद्याके द्वारा अपनी भविष्य अवस्थाको जाननेका इसी लिये उद्यम करते हैं कि यदि विदित हो जावे तो इस आगामी उदयमें आनेवाले पापकर्मकी शांतिके लिये विशेष धर्मका आराधन किया जावे। ज्योतिष शास्त्र एक ऐसी विद्या है कि यदि इसका यथार्थ जाननेवाला हो तो वह किसी प्राणीके भविष्यको बिलकुल ठीक २ कह सक्ता है। यथार्थ जोतिषका ज्ञाता अपने ज्योतिषके ज्ञानके हिसाबसे उस समयसे ही उस प्राणीके जीवनके

शुभ अशुभको जान सकेगा जिस समय उसका जन्म हुआ है।

भावार्थ—उस समय जैसा कुछ कर्म बन्ध पड़ा हुआ है और उसका जैसा कुछ उदय आगामी होगा उसको एक यथार्थ ज्योतिष-विद् बतासक्ता है। यदि वह प्राणी धर्म साधन करे व पाप प्रकृतिको पलट दे व उनकी शक्ति घटादे तथा पुण्य कर्मकी शक्तिको बढ़ा दे तो ज्योतिषी द्वारा कहे हुए फलमें भी अंतर पड़ जावेगा। यदि उसने कुछ सुख सामग्री होनी बताई है यह बात नहीं भी होसक्ती है यदि उस प्राणीके मलीन भावोंसे उस पुण्य कर्मका रस घट जावे या सूख जावे जिससे उस ज्योतिषीने सुख सामिग्रीका होना बताया था। ऐसा होनेपर भविष्यकी अवस्थाको वर्तमानमें बताकर हमें धर्म सन्मुख करनेके लिये ज्योतिष विद्या बहुत लाभकारी है। इस विद्यामें गृह नक्षत्र आदिकी चालसे शुभ अशुभ जाना जाता है। शुभ अशुभके करनेमें वे ज्योतिषी देव जो उन विमानोंमें रहते हैं किसी प्रकारका भी विकल्प व रागद्वेष नहीं करते हैं।

वे जयकुमार सुलोचना नित्यकी धार्मिक क्रियाओंमें कभी प्रमाद नहीं करते थे। प्रातःकाल सामायिक करके संयम धारणकर शरीर क्रियाकर शुद्ध हो श्री जिनेन्द्रका पूजन करके श्रीमुनीन्द्रसे उपदेश लाभकर स्वयं जिनवाणीका पाठकर पात्रोंको दान दे शुद्ध भोजन पान संतोष पूर्वक करते थे। सुलोचना सती प्राणप्रियको परम भक्ति व प्रेमसे भोजन कराकर फिर आप भोजन करती थी। दिवसके समय जब जयकुमार राज्य कार्यमें लगते थे तब सुलोचना गृह अवस्थका निरीक्षण करती तथा

अन्य रानियोंको बिठाकर धर्मशास्त्र बांचती व नाना प्रकार मनोहर काव्यों व उदाहरणोंको कह उत्तम शिक्षा देकर उन सबके मनको शिक्षित और पवित्र करती थी। नगर व राज्यमें स्त्री शिक्षा प्रचारका प्रबन्ध देखती व अनेक शालाओंका निरीक्षणकर पारितोषक देती व कन्याओंको शिक्षार्थ उत्तेजित करती थी। अनाथोंके अनाथालय व रोगियोंके लिये चिकित्सालय, पशुओंके लिये पशुशालाएं परोपकारार्थ खुलवाना, उनका निरीक्षण करना सुलोचनाका परम पवित्र कर्त्तव्य था। वह इतनी दयारससे पूर्ण थी कि एक भी मनुष्य या पशुको दुःखी नहीं देख सक्ती थी। सुलोचनाका मन मामूली संसाराशक्त स्त्रियोंकी तरह खाने पहरने व शोभा दिखाने में लीन न था किन्तु परोपकारके भावमें परिपूर्ण भरा हुआ था। सुलोचनाका पहनाव पति संपर्कके समयके सिवाय बहुत ही सादा शांत साध्वी जैसा था। जयकुमार भी राज्यकार्यमें नीति व धर्मको अपना गुरू मानकर चलते थे। जिसबातके लिये ये दोनों गुरू मनाकरते थे उस बातको वह कभी नहीं करते थे। राज्यव्यवस्थाके निरीक्षणार्थ जरा भी प्रमाद नहीं करते थे। प्रजाका पुत्रवत् लालनपालन करते थे। नगरकी अनेक संस्थाओंको जो प्रजाहितके लिये थीं कभी कभी निरीक्षण करके उनकी उन्नतिकी योजना करते थे। एक साधारण आदमी भी अपनी प्रार्थना सीधी पहुचा सक्ता व मिलसक्ता था। दिवसांतसे करीब दो घंटे पहले जयकुमार पुनः भोजन करलेते थे। सुलोचना व सर्व कुटुम्ब भी दिवसमें ही भोजनपान क्रियासे निबट जाते थे। संध्याके पहले मनोहर उपवनोंमें शीतल मंद सुगंधको लेते हुए

अनेक उपकारी वार्तालाप करते हुए ये दोनों दम्पति विहार करते थे। साथमें अन्य भी रानियां होती थीं। उन सबके मनको अपनी दृष्टि व अपनी वाणीसे प्रसन्न करते हुए जयकुमारने सर्व रणवासके चित्त कपियोंपर पूर्ण विजय प्राप्त करलिया था।

सूर्यास्त होते देख सर्व एक स्वच्छ एकांत स्थलमें जाते थे और एक महूर्त्तके लिये सब एक दूसरेसे रागबन्धन छुटा पृथक् पृथक् चित्त हो स्वात्मध्यानके आनंदमें मग्न होजाते थे। वास्तवमें ज्ञानी गृहस्थी इस श्लोकके अनुसार चलकर ध्यानका अभ्यास करते हैं जैसा श्री अमृत आचार्य समयसार कलशमें कहते हैं:—

अयि कथमपि मृत्वा तत्वकौतूहलीसन्न-
नुभव भव मूर्तैः पार्श्ववर्ती मुहूर्त्तम् ॥
पृथगथ विलसंतं स्वं समालोक्य येन।
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहं ॥२३॥

अर्थ—अरे भाई! तू किसी तरह भी जिस तरह होसके आत्म तत्वका प्रेमी हो और दो घड़ीके लिये इस मूर्त्तिक शरीर व तत्सम्बन्धी समस्त पदार्थोंका पड़ोसी बनकर अर्थात् वे भिन्न मैं भिन्न ऐसा निश्चयकर अपने आत्माके स्वरूपका अनुभवकर तौ तू अपने आत्माको सर्व अनात्माओंसे जुदा देखता हुआ शीघ्र ही मूर्तीक पदार्थोंके साथ एकतापनेके मोहको छोड़ देगा।

सामायिक करके जय सुलोचना अनेक कुटम्बीजन व मित्र मंडली सहित श्री जिन मंदिरजीमें बड़ी भक्तिसे संध्याका स्तवन दर्शन करके चित्तको शांत और प्रसन्न करते थे। पश्चात् सर्व मंडली

विराजमान होती थी श्रीयुत जयकुमार बड़े ही गंभीर व मनोहर वचनोंमें श्री जिनवाणीका व्याख्यान करते हुए श्रोताओंको शांत रसमें भिगो देते थे। सर्व श्रोता गद्गद् बदन हो अध्यात्मरसकी घूंटको पीकर इसके अनुपम स्वादकी प्रशंसा करते हुए श्री जिन मंदिरजीसे निज आलयको जाते थे।

रात्रिको जयकुमार सुलोचना सर्व कुटुम्बकी सम्हालकर, आगंतुकोंसे आवश्यकीय वार्तालाप कर, संतानोंको प्यारकर शरीर-श्रम निवारणार्थ अपने मनको परम पवित्र णमोकार मंत्रके विचा-रसे पवित्र और शांतकर शयन कर लेते थे। निद्रा लेते समय चित्त शांत रहनेसे रात्रिभर शांति रह सक्ती है। इसीसे मनको पवित्र कर ही शयन करना चाहिये।

जयकुमार सुलोचनाका गार्हस्थ्य जीवन आदर्शरूप था। प्रति अष्टमी चतुर्दशीको दोनों उपवास करके धर्मध्यान सहित अपना समय विताते थे। तीर्थयात्रा, धर्मगोष्ठी, पंचकल्याणोत्सव, रथविहार, महानपूजा आदि धर्मसाधनके निमित्तोंसे ये स्वयं धर्म पालते हुए अन्योंको धर्मके साधनमें निमित्त होते थे। सम्यक्तके जो आठ अंग कहे गए हैं वे सब आचरण रूपमें इस आदर्श दम्पतिमें पाए जाते थे। जिनधर्ममें शंका न थी, भोगाभिलाषसे धर्म साधन न था, किसीको घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखते थे, कोई भी धर्म क्रिया मूढ़तासे नहीं सेवते थे, अपने गुणोंकी वृद्धिमें आशक्त तथा अन्य साधर्मियोंकी निन्दासे विरक्त थे, धर्मभावमें अपने व दूसरोंको स्थिरीभूत करते थे, सर्व साधर्मियोंसे गोवत्ससम प्रीति रखते थे तथा धर्मकी प्रभावना करनेके नित्य अभिलाषी तथा

उद्योगी थे। इन आठ अंग सहित सम्यक्तको पालते हुए राज्य-कार्य करते हुए भी पांच अणुव्रतोंको पालते थे। संकल्प करके अर्थात् हिंसाके भावसे कभी किसी त्रसजीवको नहीं मारते थे। क्षत्रीकर्ममें व ग्रहीकर्ममें जो २ आरंभ करने पड़ते थे उनके द्वारा जो त्रसघात होजाता था उसके छोड़नेके लिये असमर्थ होनेपर भी उस घातसे भी बचनेकी भावना करनेमें रुचिवान थे। गृहस्थी आरंभी हिंसाको सर्वथा छोड़ नहीं सक्ता—ऐसी हिंसा उसी समय छूटती है जब गृहस्थ आठवीं प्रतिमा आरंभ त्यागमें प्रवेश करता है। इसके पहले यथाशक्ति यत्न मात्र रहता है। गृहस्थका अहिंसा अणुव्रत अपनी सीमा यहीं तक रखता है। इसीसे अणुव्रती गृहस्थ राज्य करसक्ते, शत्रुको सुमार्गपर लानेके लिये उसके दमनार्थ युद्ध करसक्ते व व्यापार, खेती, शिल्प आदि कर्म करसक्ते हैं। यदि इन बातोंका भी सर्वथा त्याग हो तो गृहस्थी गृहकर्ममें रहकर अर्थ और काम पुरुषार्थ साधन नहीं करसक्ता। आवश्यक कर्तव्यके कारण ही गृहस्थी आरंभी हिंसाको सर्वथा टाल नहीं सक्ता। ये दोनों धर्मात्मा इस बातकी बड़ी सम्हाल रखते थे कि उनके राज्यमें कोई धर्मके बहाने पशुओंको घात नहीं करे, शिकारके शौकसे पशुओंको न मारे, पशुओंके साथ निर्दयतासे व्यवहार न हो, कोई मनुष्य या पशु कष्टसे व निर्दयतासे बांधे व पीटे न जावें, किसी मनुष्य या पशुके अंग उपंग छेदे न जावें, किसीपर अधिक बोझा लादा न जावे तथा किसीके भोजनपानका निरोध न किया जावे, इसतरह अहिंसा अणुव्रतको पालते थे; अहिंसाके भावको ध्यानमें रखते

हुए उसीके दृढ़ करनेके लिये सत्य बोलते थे, चोरीके दोषसे बचते थे, स्वस्त्रीमें सन्तोष रखते थे व परिग्रहको प्रमाणरूपमें नियमित करलिया था ।

आदर्श जीवन बिताते हुए साधुसंतोंका आदर सन्मान करते हुए ये दोनों पति पत्नी गृही धर्मके सुखको भोगते हुए धर्म भावके कारण आनंद और संतोष लाभ करते थे । वास्तवमें वे ही गृहस्थ गृहमें रहकर कुछ सुख भोगसक्ते हैं जिनके भावोंमें धर्मकी रूचि हो व अध्यात्मिक भावना हो । इसी धर्मके प्रतापसे गृही-जन दुःख व आपत्ति आने पर भी धैर्यको रखसक्ते हैं तथा संतोषका पान करते हुए कर्मोदयकी विचित्र लीलाको देखते हुए घरमें अलिप्त जलकमलवत् रहते हैं । द्रव्यके स्वभावके ज्ञानके कारण धर्मात्मा गृहस्थियोंका मन किसी भी चेतन व अचेतन पर वस्तुमें फंसता नहीं है । उनको अपनी सत्ताका भिन्न ज्ञान रहता है । वे कुटम्बी जनोंको एक नौकामें एकत्रित पथिक जनोंके समान समझते हैं । धर्मके श्रद्धान, ज्ञान व आचारणकी अपूर्व महिमा है । इसी रत्नत्रय धर्मसे यह संसारी आत्मा सुख, शांति व सन्तोषको पासक्ता है । ये दोनों इस धर्मका मुकुट बांधे हुए गृही धर्मका नमूना बता रहे थे ।

सातवाँ अध्याय।

दृढ़ प्रतिज्ञा और आत्मकल्याण।

बहुत कालतक गृहस्थ धर्मको पालते हुए एक दिन जयकुमारके मनमें आई कि देश भ्रमण करना चाहिये, नाना प्रकार देशोंके अवलोकनसे बुद्धि चमत्कृत होती है। उन देशोंके लोगोंके संपर्कसे उनका व अपना हित होता है। जहां २ तीर्थ स्थान व मंदिर हैं उनके दर्शन प्राप्त होते हैं, साधुओंके दर्शन मिलते हैं, उनके अनेक प्रकारके हितकारी उपदेशसे ज्ञानका लाभ होता है। गृहस्थोंके लिये देश भ्रमण भी बड़ा ही अनुभवका प्रबल कारण है। सुलोचनाकी सम्मति भी यही हुई। जयकुमारको प्रज्ञप्ति आदि विद्याओंके प्रभावसे विमानोंमें उड़कर ढाई द्वीपभरमें जानेकी शक्ति होगई थी। बस, शुभ मुहूर्तमें श्रीजिनेन्द्रकी अर्चा करके जयकुमार सुलोचना शीघ्रगामी विमानपर चढ़कर देश भ्रमणार्थ चल दिये। चलते समय राज्यका भार अपने छोटे भाई **विजयकुमार**के सुपुर्द कर दिया। राज्यभारकी चिंतासे मुक्त होकर दोनों जनें निराकुल हो देशाटनमें लग गए। अनेक देश, नदी, पर्वतोंपर उतरते, सैर करते, साधुओंके दर्शन लेते, तीर्थयात्रा करते हुए उस कैलाश पर्वतके वनमें आए जहांसे श्री रिषभदेवका निर्वाण होगा। वहांकी अपूर्व शोभा देखनेके लिये विमानसे उत-

रकर जयकुमार सुलोचना विहार करने लगे। यद्यपि इनका चित्त एक था तथापि जीवत्वकी सत्ता भिन्न २ होनेसे, परिणमन अलग २ होनेसे, कर्मोंका उदय अलग २ होनेसे कभी कभी किसी पदार्थकी रुचिमें अन्तर पड़ जाता था। इससे कभी जयकुमार आगे बढ़ जाते थे और सुलोचना किसी वस्तुको देखती२ पीछे रह जाती थी फिर कुछ देर बाद वे मिल जाते थे। इस तरह दोनों कैलाशके वनमें विहार कर रहे हैं। उसी दिन सौधर्म इन्द्रने अपनी सभामें देवोंके सन्मुख शील धर्मपर व्याख्यान करते हुए उदाहरणमें जयकुमार तथा सुलोचनाका नाम लिया कि भरत क्षेत्रमें ये दो नामांकित गृहस्थ शीलव्रतमें बहुत दृढ़ हैं। न जयकुमार परस्त्रीकी न सुलोचना पर पुरुषकी मन वचनकायसे इच्छा करते हैं। उनके शीलकी महिमा अचिंत्य है। यद्यपि शील नाम स्वभावका है तथापि ब्रह्मचर्य पालनको भी शील कहते हैं, क्योंकि शीलवान अपने मार्गमें चलता है पर मार्गमें नहीं जाता है। जयकुमार अपनी विवाहिता स्त्रियोंके सिवाय अन्य स्त्रियोंको अपनी माता, बहन व पुत्रीके समान जानता है। वैसे ही सुलोचना अपने पतिके सिवाय अन्य पुरुषको पिता, भ्राता व पुत्रके समान समझती है—दोनों परम संतोषी हैं, बड़े ही दृढ़ सम्यक्तवान है, सच्चे आदर्श श्रावक गृहस्थ हैं। इन्द्रके ऐसे प्रशंसनीय वचन सुनकर सर्व देवोंकी सभा बड़ी ही प्रसन्न हुई और शील धर्मको उत्कृष्ट जानती भई। देव देवियोंमें तो स्वभावसे ही शील भाव होता है। वहां किसीके भाव एक दूसरेकी देवी पर व देवीके दूसरे देव पर चलायमान नहीं होते हैं—अपने२

नियोगीकी ही ओर प्रीतिपात्र रहते हैं। सभामें रविप्रभ नामके देवके मनमें आई कि इन्द्र जिनकी अति प्रशंसा करते हैं उनकी परीक्षा तो करनी चाहिये कि वे शीलमें कैसे दृढ हैं। ऐसा विचार उसने कांचना देवीको आज्ञा की कि बहुत ही मनोहर स्त्रीका रूप बनाकर तू जयकुमारके चित्तको मोहित कर। यदि दृढ़ प्रतिज्ञ हो तो उसकी पूजा करके पीछे आना। आज्ञा पाते ही देवीने जहां तक श्रृंगार व रूपकी हद्द है वैसा बहुत ही रूपवान स्त्रीका रूप बनाया जिसको देखकर बड़े २ वीर योद्धाओंका मन चपल होजावे। शिल्प शास्त्रके अनुसार जैसी कुछ सुन्दरता एक मनुष्यणीके अंगमें होनी चाहिये वैसी सुन्दरता इस देवीने धारण कर ली और तुरत उस वनमें आई जहां पर जयकुमार सुलोचना वनविहार कर रहे थे। उस समय सुलोचना पुष्पवनकी वाटिकामें मनोहर फूलोंको तोड़नेमें और इकट्ठा करनेमें लगी थी और जयकुमार जो निर्भय और निःशंक थे व जिनको सुलोचनाको भी निःशंक और निर्भय माननेका विश्वास था। सुलोचनाको पुष्प तोड़ते छोड़कर आप कुछ दूर आगे बढ़ गये थे। जयकुमारको अकेले देखकर वह देवी अपने रूप सौन्दर्यसे बिजलीके समान चमकती हुई, अपने नेत्रोंसे युग मीनोंकी चंचलताको प्रगट करती हुई तथा अपनी चालसे हंसनीको हंसती हुई धीर २ जयकुमारके सामने आ खड़ी होगई। जयकुमार उस स्त्रीके अद्भुत रूपको देखकर चकित होगये फिर नामकर्मका स्वभाव विचार कर समचित्त होगए। कुछेक क्षण पीछे जयकुमारने पूछा तू कौन है और क्यों यहां आई है। वह

कांचनादेवी बात बनाकर बड़े ही लुभानेवाले शब्दोंमें कहती है-कि हे स्वामिन् मैं विद्याधरी हूं। विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें मनोहर देश है उसमें रत्नपुर नगर बड़ा ही शोभनीक है। उस नगरका राजा पिंगालगांधार है। रानी सुप्रभा है। मैं उनकी पुत्री विद्युतप्रभा हूं और महाराज नमिकी रानी हूं। मैं इधर क्रीड़ा करने आई थी। आपके मनोहर कामदेव सम रूपको देख मेरा मन आपमें आशक्त होगया है। मैं बहुत समझाती हूं पर वह आपके स्पर्श विना विह्वल है-उसे चैन नहीं है। सो हे स्वामि न्! मैं इस अभिलाषाकी तृषासे प्यासी हो रही हूं आप बड़े दयावान धर्मात्मा हैं। दुःखी पर करुणा करनेवाले हैं, परोपकारके लिये सब कुछ अर्पण करनेवाले हैं सो मुझ दुःखिया पर दया कीजिये और मुझे रतिका दान दे मेरी तृषाको शांत कीजिये। आप यदि ऐसी कृपा न करेंगे तो अवश्य इसी समय मेरे प्राण पखेरू मेरे तनसे बाहर होजावेंगे और आपको इस मेरे घातका दोष प्राप्त होगा सो दयानाथ 'यहांपर अन्य कोई नहीं है' आप कृपा करके मुझे स्वीकार कीजिये और मेरी आकुलताको मेट मुझे निराकुल कीजिये।

जयकुमार इन अशुभ पापमय शब्दोंको यद्यपि वे मिष्ट थे परंतु विषभरे इन्द्रायण फलके तुल्य असार जानकर उनको तिरस्कार करता हुआ बोला।

हे भगिनी! सुन तू मेरी सगी बहनके तुल्य है। तू राजा नमिकी धर्मपत्नी है। तुझे स्वप्नमें भी परपुरुषकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। तुझे अपने पतिमें ही संतोष धारण करना चाहिये। यह संसार असार है, जीवन क्षणभंगुर है, परलोकमें हरएक

जीवको जाना है। तब फिर हरएक जीवको अशुभकामोंसे बचना चाहिये। अशुभक्रियाओंसे यहां तो अपयश होता और पापबंध होनेसे दुर्गतिमें यह जीव चला जाता है। इससे हे शोभने! तेरा शरीर यद्यपि सुन्दर है तथापि तेरा चित्त दोषोंसे परिपूर्ण है इससे तू विषभरे सुवर्ण घटके समान तिरस्कारके योग्य है। तू अपने भावको बदल दे और शील धर्मकी सुगंधसे उसे पूर्णकर क्योंकि एक सौभाग्यवती स्त्रीका पातिव्रत ही भूषण है। शील रहित स्त्री सुभग होनेपर भी कुरूप है, वस्त्राभूषणसे अलंकृत होने पर भी नग्न लज्जाजनक और अदर्शनीय है। आचार्य कहते हैं—

सोदर्या त्वं ममादायि मया मुनिवराद् व्रतं।
परांगनांगसंसर्गसुखं मे विषभक्षणं॥ २६७॥

भाव यह है कि हे बहिन! तू मेरी भगिनीके समान अग्राह्य है। मैंने मुनिमहाराजसे यह व्रत लिया है कि परस्त्रीके अंग संबंधका सुख मेरे लिये विष खानेके समान है। मैं अपने प्राण जाते हुए भी अपने धर्म और व्रतको खंडन नहीं कर सक्ता हूं इसलिये तू जा, मेरे पाससे दूर हो।

कांचना देवी तो परीक्षा करने ही आई थी। अनेक तरह दीनताके बचन वारवार कहने लगी परन्तु उन बचनोंका असर जयकुमारकी कठोरचित्त भूमि पर रंच मात्र न हुआ। लाचार होकर उस देवीने अनेक भय दिखाए और जयकुमारके दृढ़ रहने पर उसने राक्षसीका रूप धारण किया और जयको उठाकर वहांपर ले आई जहां सुलोचना फूल तोड़ रही थी। सुलोचनाने

अपनी तीक्षण बुद्धिसे जयकुमारपर देवीकृत उपसर्ग समझा और उसके दूरकरनेके लिये राक्षसीको वक्रदृष्टिसे देखा तथा उसे ललकारा। सुलोचना बड़ी शीलवान पतिव्रता स्त्री थी, इसके शीलके महात्म्यसे कांचनादेवी वहां अधिक न ठहरसकी और जयकुमारको छोड़कर भागी और जिस देवने भेजा था उससे इन दोनोंके शीलधर्मकी खूब ही प्रशंसा की।

यहांपर आचार्य कहते हैं—

पुष्पावचयसंसक्तनृपकांताभि तर्जिता।
भीत्वा तच्छीलमाहात्म्यात् कांचनाऽदृश्यतां गता
॥२६९॥

भाव यह है कि पुष्पोंके संचयमें लीन सुलोचनासे तर्जित होनेपर उस सुलोचनाके शीलके प्रभावसे डरकर वह कांचना अदृश्य होगई।

वह देव शीघ्र ही इन दोनों शीलवान गृहस्थोंके पास आया और इनके सम्यक्त और शीलकी वार वार प्रशंसा की, फिर उसने अपने दोषके लिये क्षमा मांगी और अति प्रसन्न मुख हो लौटगया।

जयकुमार सुलोचना शीलधर्मके कारण स्वर्गवासी देवसे पूजित होनेपर धर्म व चारित्रमें और भी दृढ़ होगए। वास्तवमें सज्जनोंके गुणोंकी प्रशंसा उनमें गुणोंकी वृद्धिका कारण है।

देशभ्रमण अपनी इच्छाके अनुसार समाप्त करके ये दोनों अपने राज्यमें आए और पूर्वके समान धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ साधने लगे।

बहुत काल राज्य करके एक दिन जय आदिनाथके समवशरणमें दर्शन करने व उपदेश सुनने पधारे। श्री जिनेन्द्र भगवानको द्वादश सभाओंके मध्य सिंहासनपर अंतरीक्ष विराजमान परम वीतराग, स्वस्वरूपाशक्त, परमानंद मग्न रूपमें दर्शनकर इस आदर्श दम्पतिको उनसे दिव्यध्वनिको बिना सुने हुए ही परम शांतभाव प्राप्त होगया। वास्तवमें आंखोंके सामने जिस भावका प्रदर्शन करानेवाला रूप आता है, मनमें यदि उधर रुचि होती है तो वैसा ही भाव झलक उठता है। शांतमूर्ति शांत भाव, शृंगारमूर्ति शृंगारभाव, वीरमूर्ति वीरभाव, न्यायमूर्ति न्याय-भाव, न्यायी राजाकी मूर्ति राज्यभक्तिका भाव अवश्य २ एक रुचिवान दर्शकके दिलमें पैदा करदेते हैं। जैसा जीवका भाव होता है वैसा असर आत्मा पर पड़ता है। यदि शुभ भाव होता है तो पुण्यकर्मका बंध होजता है। यदि अशुभ भाव होता है तो पाप कर्मका बंध होजाता है। यदि शुद्ध वीतराग भाव होता है तो पिछले बांधे कर्मोंकी निजरा होजाती है। भावोंके पलटनेमें जैसे सत्संगति, उत्तम ग्रन्थ पठन व मनन उपयोगी हैं वैसे शांत वीतराग मूर्तिका दर्शन व वीतराग भगवानका पूजन भजन कार्यकारी है।

जयकुमार सुलोचनाने बड़े ही नम्र और भक्तिपूर्ण विद्वत्ता-पूर्ण काव्योंसे श्री ऋषभदेव भगवानकी स्तुति करके अपनी गाढ़ भक्ति परमात्माके शुद्धभावमें जागृत की और बड़े विनयसे अष्ट द्रव्योंके द्वारा पूजन की। पूजन स्तवन करके जयकुमार पुरुषोंकी सभामें और सुलोचना स्त्रियोंकी सभामें उपदेश सुननेके लिये बैठे।

श्री ऋषभदेवकी दिव्यध्वनि मेघकी गर्जना समान प्रगट हुई। जिसके मार्मिक तत्त्वज्ञानमई व्याख्यानका कौन वर्णन कर सक्ता है, तथापि उसका एक अंशका कुछ दिग्दर्शन यहां पाठकोंको कराया जाता है—

श्री ऋषभदेवके उपदेशका कुछ सार।

यह लोक अनादि अनंत अकृत्रिम है। छह द्रव्योंके समुदायको लोक कहते हैं। अनंत अमर्याद आकाशके मध्य लोकाकाश है। जिसका आकार ऐसे पुरुषके आकार है जो दोनों पग फैलाए हो और दोनों हाथ जिसकी कमरपर मुड़े हुए रक्खे हों अथवा १॥ मृदंगके आकार है आधा नीचे और पूरा उसके ऊपर रक्खा हो। इसे ही लोक कहते हैं। यह बहुत बड़ा है, तीनसौ तेतालीश घन राजू प्रमाण है। एक राजूकी लम्बाईमें ऐसे असंख्यात द्वीप समुद्र आसक्ते हैं जो एक दूसरेसे दूने दूने चौड़े हैं। सबसे छोटे द्वीपकी चौड़ाई एक लाख बड़े योजन प्रमाण है जो २००० कोशका होता है। इस लोकके तीन भाग हैं ऊर्द्ध, मध्य और अधः। मध्यलोकमें मुख्यतासे मनुष्य पशु रहते हैं। ऊर्द्धमें देवगण और अधोलोकमें नारकी रहते हैं। सबके ऊपर सिद्धलोक है जहां मुक्तात्मा अपने स्वरूपानंदमें मग्न विराजते हैं। इसलोकमें छः द्रव्य हर स्थानपर पाए जाते हैं। वे छः द्रव्य इस तरह हैं—

(१) जीव द्रव्य—जिसका लक्षण चेतना है। देखना जानना इसका उपयोग है। यह स्पर्श रस गन्ध वर्णसे रहित है इसलिये स्वभावसे अमूर्तिक है। यद्यपि संसारी आत्मा पूर्ण

रूपसे कर्म पुद्गलोंसे बन्धा है इसलिये मूर्तीकसा हो रहा है। यह जीव स्वभावसे यद्यपि लोकाकाशके बराबर असंख्यात प्रदेशी है तथा लोकमात्रमें व्याप सक्ता है तथापि संसारी आत्मा नाम कर्मके उदयसे प्राप्त हुए शरीरके आकार प्रमाण है। और मुक्तात्मा अंतिम देहसे कुछ कम आकार प्रमाण अपने चेतनात्मक आकारमें पुद्गल सम्बन्धके विना रहते हैं। यह जीव स्वभावसे रागद्वेष रहित वीतरागभावका कर्त्ता और भोक्ता है तथापि संसार अवस्थामें कर्मोंके बंधनके निमित्तसे यह रागद्वेष भावोंका कर्त्ता और भोक्ता होजाता है। व्यवहारमें इसी जीवको पुण्य पाप कर्मोंको बांधनेवाला और उनके फल सुख और दुःखको भोगनवाला कहते हैं। यही जीव एकेन्द्रीकी पर्यायमें स्पर्शइन्द्रियसे छूकर मात्र जानसक्ता है और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायमें रहता हुआ चार प्राणोंको धारता हुआ जीता रहता है-स्पर्श इन्द्रिय, कायबल, आयु और श्वासोच्छ्वास ये चार प्राण एकेन्द्रिय जीवोंके होते हैं। द्वेन्द्रियकी पर्यायमें यह जीव स्पर्श इन्द्रियसे छूकर और रसना इन्द्रियसे स्वाद लेकर जानता है और लट, कौड़ी, संख, केचुआ आदि रूपसे छः प्राणोंसे जीता रहता है-एकेन्द्रियसे इसके रसना इन्द्रिय और वचनबल ये प्राण अधिक होजाते हैं। तेन्द्रियकी पर्यायमें यह जीव स्पर्शसे छूकर, रसनासे स्वाद लेकर तथा घ्राणसे सूंघकर जानता है और चींटी, बिच्छू, जौं, खटमल आदि रूपसे सात प्राणोंसे जीता है-द्वेन्द्रियसे इसके एक घ्राणइन्द्रिय प्राण अधिक होजाता है। चौन्द्रियकी पर्यायमें यह जीव स्पर्शसे छूकर, रसनासे स्वाद

लेकर, घ्राणसे सूंघकर तथा आंखसे देखकर जानता है और मक्खी, भौंरा, पतंगा, भिड़ आदिके रूपसे आठ प्राणोंसे जीता है–तेन्द्रियसे इसके एक चक्षु इन्द्रिय प्राण अधिक होता है। पंचेन्द्रिय असैनीकी पर्यायमें यह जीव स्पर्शसे छूकर, रसनासे स्वाद लेकर, घ्राणसे सूंघकर, चक्षुसे देखकर तथा कानसे सुनकर जानता है और मनविना पानीके कोई १ जातिके सर्प आदिके रूपसे नौ प्राणोंसे जीता है–चौन्द्रियसे इसके एक कर्ण इन्द्रिय प्राण अधिक होता है। यहांतक सब जीवोंके मन नहीं होता। मन वह है जिसके द्वारा कारण कार्यको तर्क करके विचार कर सकें, उपदेश ले सकें व संकेतोंको समझ सकें। पंचेंद्रिय सैनी जीवोंके मन होता है। ऐसे जीवोंके एक मन बल जोड़नेसे दश प्राण होते हैं। पशुओंमें गाय, भैंस, घोड़ा, हाथी, ऊंट, बंदर, बकरा, हिरन, कबूतर, मुरगा, कछवा, मछली, मगरमच्छ आदि। मनुष्योंमें सब जन्म प्राप्त मनुष्य, सब देव और सब नारकी पंचेंद्रिय सैनी होते हैं। जो पंचेन्द्री सैनी हैं वे ही धर्मके स्वरूपको समझनेकी और अपना आत्महित थोड़ा या बहुत अपनी शक्तिके अनुसार करनेकी योग्यता रखते हैं। जीव अपने चेतना प्राणसे सदा जीता रहता है परंतु किसी शरीरमें अपने ऊपर लिखे प्राणोंसे ठहरता है। संसारमें इन बाहरी प्राणोंके जन्मको जन्म और इनके मरणको या वियोगको मरण कहते हैं। तथा जिस जीवके ये प्राण जितने अधिक हैं व जितने बलिष्ठ हैं उनके घात करने पर प्रायः कषायकी भी उतनी तीव्रता होती है इससे उतना ही अधिक पाप होता है। प्रत्येक जीव अपनी सत्ता अलग अलग रखता है, कोई जीव कभी भी

किसी जीवसे मिलकर एक नहीं होजाता इसीसे हरएक जीव अपने ही अशुद्ध भावोंसे अपनेको कर्मबंधसे मैला करता है और अपने ही शुद्ध भावोंसे अपनेको कर्मबंधसे छुटा सक्ता है। कोई किसी अन्यको न बन्धनमें डाल सक्ता और न मुक्त कर सक्ता है। जीव इस लोकमें सर्वत्र भरे हैं–बहुतसे सूक्ष्म एकेन्द्री हैं जो किसी इंद्रियसे नहीं प्रगट होते और जो पर्वतादिकको भेदकर चले जाते और अग्नि आदिमें न जलकर अपनी मौतसे मरते हैं। निगोद अर्थात् साधारण वनस्पतिके शरीरमें अनंत जीव एक शरीरमें रहते हैं। इस तरह जीव अनंतानंत हैं। इनमेंसे जो कोई धर्म साधनकर शुद्ध होजाता है वह चार गति, चौरासी लाख योनिके भ्रमणसे सदाके लिये छूटकर ऊर्द्धगमन स्वभावसे लोकाकाशके अंतमें विराजमान होजाता है और वहां ज्ञानानंदका विलास करता है।

२ पुद्गल द्रव्य–जिसमें रूखा, चिकना, गर्म, ठंढा, नरम, कठोर, हलका, भारी आठ तरहका स्पर्श हो। सफेद, लाल, पीला, हरा, काला पांच तरहका वर्ण हो। खट्टा, मीठा, तीखा, चर्परा, कषायला पांच तरहका रस हो। सुगंध, दुर्गंध दो तरहकी गंध हो उसे पुद्गल कहते हैं। पुद्गलके दो भेद हैं–परमाणु और स्कंध। जिसका दूसरा भाग नहीं होसक्ता उसे परमाणु कहते हैं। दो या अधिक परमाणुओंके मिलनेसे जो बनता है उसे स्कंध कहते हैं। इन २० गुणोंमेंसे परमाणुमें एक समयमें ५ पांच गुणसे अधिक नहीं होते अर्थात् गर्म या ठंढा तथा रूखा या चिकना ऐसे दो स्पर्श, कोई न कोई एक रंग, कोई न कोई एक स्वाद,

व कोई न कोई एक गंध। परन्तु स्कंधमें एक समयमें सात गुण पाए जाते हैं। इन पांचके सिवाय दो स्पर्श और होते हैं अर्थात नरम या कठोर तथा हलका या भारी। ये स्कंध बहुतसे इतने सूक्ष्म होते हैं कि हमें किसी भी इंद्रियसे नहीं मालूम पड़ते। जो २ वस्तुएं हमारी पांचों इंद्रियोंसे जाननेमें आती हैं वे सब स्कंध हैं।

पुद्गल द्रव्यके छः भेद किये गए हैं—

१ स्थूल स्थूल—वे स्कंध हैं जो टुकड़े करनेपर विना तीसरी चीज़को मिलाए जुड़ नहीं सक्के जैसे कागज़, लोहा, काठ, आदि मोटे पदार्थ।

२ स्थूल—वे स्कंध हैं जो बहनेवाले हैं। जो अलग करने पर फिर मिल सक्के हैं—जैसे पानी, शरबत, दूध आदि।

३ स्थूल सूक्ष्म—वे स्कंध हैं जो देखनेमें मोटे दिखें परंतु हाथोंसे पकड़े न जासकें जैसे धूप, चांदनी, रोशनी छाया आदि।

४ सूक्ष्मस्थूल—वे स्कंध हैं जो देखनेमें न आवें परंतु और चार इन्द्रियोंसे जाने जा सकें जैसे हवा, शब्द आदि।

५—सूक्ष्म—वे स्कंध हैं जो पांचोंमेंसे किसी भी इन्द्रियसे न जाने सकें परंतु अनुमानसे जाने जावें। जैसे कार्माण वर्गणा जिनसे आठ कर्मोंका कार्माण शरीर या पुण्य पापमई सूक्ष्म शरीर हरएक संसारी जीवमें बना करता है आदि।

६—परमाणु—जिसका दूसरा भाग नहीं होसके। यह पुद्गल जगतमें अनेक अवस्थाओंमें हैं। ये भी अनंतानंत हैं। ये भी तीनलोकमें भरे हुए हैं।

जीव और पुद्गल द्रव्य क्रियावान् हैं अर्थात् हलनचलन

करसक्ते हैं। जीवसे पुद्गल मिलकर उसे अशुद्ध करते हैं तथा पुद्गल पुद्गलसे मिलकर स्कंध बनते हैं व स्कंध टूटकर छोटे पुद्गल परमाणु तक बन जाते हैं। इन दो द्रव्योंके कारण ही इस संसारका नाटक चल रहा है। अन्य चार द्रव्य मुख्यतासे इन दो द्रव्योंके कार्योंमें सहकारी हैं। जीव और पुद्गल इस संसारमें अपनी निजकी उपादान शक्तिसे चार काम करते हैं अर्थात् कहीं अवकाश पाना, चलना, ठहरना और अवस्थाओंको बदलना। क्योंकि कोई भी काम विना उपादान और निमित्त सहकारी कारणके नहीं होता है जैसे घड़ा मिट्टी और सहकारी कारण चाक आदिके विना नहीं बन सक्ता ऐसे ही इन चार कामोंके लिये चार द्रव्य निमित्त कारण हैं।

३ **आकाश द्रव्य**–यह अमूर्तीक सर्व व्यापक अनंत आकाश सब द्रव्योंको अवकाश देता है।

४–**धर्मास्तिकाय द्रव्य**–यह अमूर्तीक लोकाकाश प्रमाण व्यापक द्रव्य जीव पुद्गलको गमनमें सहकारी है।

५–अधर्मास्तिकाय–यह अमूर्तीक लोकाकाश प्रमाण व्यापक द्रव्य जीव पुद्गलको ठहरनेमें सहकारी कारण है।

६–कालद्रव्य–यह अमूर्तीक द्रव्य सब द्रव्योंकी अवस्थाओंके पलटनेमें सहकारी कारण है। इस द्रव्यकी संख्या असंख्यात है। लोकाकाशमें असंख्यात प्रदेश हैं। जितनी जगह एक अविभागी पुद्गल परमाणु रोके उसे प्रदेश कहते हैं यह एक माप है। इससे माप करनेपर इस लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश होते हैं। हरएक प्रदेशपर अलग अलग एक एक काल द्रव्य है जिसको कालाणु

कहते हैं इससे काल द्रव्य या कालाणु असंख्यात हैं। वे कभी आपसमें मिलते नहीं इससे इस काल द्रव्यको अकाय कहते हैं और शेष पांच द्रव्योंको अस्तिकाय कहते हैं।

इस आत्माको अपनी अशुद्धताका ज्ञान करानेको तथा अशुद्धताको मेटकर शुद्धताकी प्राप्ति करनेके उपाय जाननेको सात तत्त्वोंका ज्ञान होना जरूरी है। उनके नाम हैं—जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। इनहीमें पुण्य और पाप जोड़ देनेसे नौ पदार्थ वा नौ तत्त्व भी कहलाते हैं।

जिन छः असली मूल द्रव्योंका ऊपर वर्णन किया गया है वे जीव अजीव तत्त्वमें गर्भित हैं। जीव तत्त्वके सम्बन्धमें इतना और जानना जरूरी है कि जो जीव शुद्ध होते हैं उनको परमात्मा कहते हैं। जो अशुद्ध दशामें अज्ञानी मिथ्यादृष्टी होते हैं उनको बहिरात्मा कहते हैं। इनको आत्माके स्वभावका पता नहीं होता है और जो अशुद्ध दशामें भी सम्यग्दृष्टी और सम्यग्ज्ञानी हैं जिनको अच्छी तरह आत्मा और अनात्मा अर्थात् जीव और अजीवका भेद मालूम होता है उनको अंतरात्मा या महात्मा कहते हैं। हमको बहिरात्मापना छोड़कर अंतरात्मा हो परमात्मारूप होनेके लिये परमात्माका ध्यान करना चाहिये।

यह संसारी जीव कर्मोंसे कैसे अशुद्ध होता रहता है अर्थात् इसके कर्म कैसे बंधते हैं इसके जाननेके लिये आश्रव और बंधतत्व समझने योग्य हैं। कार्माण वर्गणा जो सूक्ष्म पुद्गल स्कंध हैं उनके आत्माके पास आनेको आश्रव और उनके आत्माके साथ बंध जानेको बंध कहते हैं।

इस आश्रव और बंधके लिये कारण योग और कषाय हैं।

इस जीवमें योग शक्ति है जिससे यह जीव कार्माण वर्गणाको अपनी तरफ खींच लेता है। पूर्वमें बांधे हुए कर्मोंके उदयके असरसे और मन वचन या कायके हलनचलनके निमित्तसे यह योग शक्ति कर्म पुद्गलोंको खींचनेका काम करती है। जैसे गर्म लोहा चारों तरफसे पानीको खींच लेता है ऐसे आत्माकी योग शक्ति कषायोंद्वारा संतप्त होकर नवीन कर्मवर्गणाओंको खींच लेती है। जैसे ही कर्म आते हैं वैसे ही आत्मासे बन्ध जाते हैं इससे आश्रव और बन्ध दोनों एक समयमें होते हैं।

बन्ध चार तरहका होता है—प्रकृति और प्रदेश, स्थिति और अनुभाग। इनमेंसे पहलेके दोनों योगसे और पिछले दोनों कषायोंसे होते हैं। कर्मोंमें स्वभावका होना सो प्रकृति बंध है जैसे ज्ञानावरणीय कर्मका स्वभाव ज्ञानको ढकनेका, दर्शनावणीय कर्मका दर्शनको ढकनेका, अंतराय कर्मका आत्माके वीर्यको ढकनेका, मोहनीय कर्मका आत्माके सम्यक्त और चारित्र गुणको विपरीत करनेका, वेदनीय कर्मका सुख और दुःखकी सामग्रीका सम्बन्ध मिलाना जिससे सुख या दुःखका वेदन होसके, नामकर्मका शरीरादि रचना करनेका, गोत्रकर्मका ऊंच नीच कुलमें रखनेका, तथा आयु कर्मका किसी शरीरमें रोकनेका इस तरह आठ कर्मोंका स्वभाव है। जो योगोंके द्वारा कर्मवर्गणा खिंचकर आती हैं वे आठ कर्मोंके बंधने योग्य विशेष योगोंके निमित्तसे आती हैं। जितनी २ वर्गणा जिस जिस कर्मके योग्य आती हैं उसकी गणनाको प्रदेश बंध कहते हैं। जो कर्म आत्माके साथ बंधा वह

कितने समय तक बंधा रहेगा उसकी मर्यादाको स्थितिबंध कहते हैं। तथा वह कर्म अपने फलको प्रगट करते हुए तीव्र फल देगा या मंद इस बातको अनुभाग बंध कहते हैं। जैसे पेटमें डाला हुआ अन्न व दवा अपने समयपर पचकर फल दिखलाते रहते हैं। जब उनके परमाणु शरीरसे निकल जाते हैं तब फल भी बंद हो जाता है। किसी औषधिका असर वर्षों, किसीका महीनों तक रहता है। वैसे सूक्ष्म कार्माण शरीरमें जो प्रवाहसे अनादि कालसे संसारी जीवके साथ चला आता है नए कर्म पुद्गल आकर मिलते हैं वे अपना असर अपनी प्रकृतिके अनुसार अधिक व कम कालतक प्रकट करके झड़ जाते हैं। इसी कारण जीवोंके भावोंमें, ज्ञानमें, शरीरमें, कुलमें, सुखदुःखकी निमित्त सामग्रीमें सब जीवोंके अंतर है क्योंकि कर्मबंध भिन्न २ जातिका हरएक जीवमें है।

यदि एक तरफसे पिछले कर्म अपना फल देकर झड़ें और दूसरी तरफ नए कर्म सदा बंधते रहें तो यह जीव कभी भी कर्मोंके बंधसे छूट नहीं सक्ता है। इसलिये आत्माकी शुद्धिके अर्थ संवर और निर्जरा तत्वोंको बताया गया है।

कर्मोंके आश्रवको रोक देना संवर है। जिन २ भावोंसे कर्म आते हैं उन २ भावोंके विरोधी भावोंके द्वारा कर्मोंका आना रुक जाता है। यद्यपि मन वचनकाय द्वारा चले हुए योगोंसे कर्म आते हैं और इनके रोक लेनेसे कर्मोंका आना रुक जाता है तो भी मन वचनकाय द्वारा विशेष प्रकार कर्मोंके आनेमें मददगार मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद और कषाय भाव हैं। इसलिये

इनके रोकनेके लिये सम्यग्दर्शन, विरति भाव, अप्रमाद और वीत-राग भावकी आवश्यक्ता है।

जीव अजीव आदि तत्वोंको औरका और श्रद्धान करना मिथ्या दर्शन है और इनहीका जैसाका तैसा सच्चा श्रद्धान करके तथा आत्माका स्वभाव निश्चयकर उसे कर्मबंधसे छुड़ाकर शुद्ध मुक्त करनेकी और अतीन्द्रिय सुखकी प्राप्तिकी रुचिको सम्यग्दर्शन कहते हैं।

हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पांच पापोंमें स्वच्छन्द प्रवृत्तिको अविरति भाव कहते हैं। इनके विरोधी अहिंसा, सत्य, अचौर्य्य, ब्रह्मचर्य्य और परिग्रह रहित भावमें वर्तनेको विरति भाव कहते हैं। पूर्ण विरति भाव परिग्रह, धन, धान्य, गृह, वस्त्रके त्यागी निर्ग्रंथ मुनियोंके होता है। अणुरूप या एकदेश विरति भाव गृहस्थ श्रावकोंके होता है। स्त्री, भोजन, देश, राजाकी कथाएं कुकथाएं हैं; आत्मस्वरूपमें असावधानी करानेवाली हैं। इन भावोंमें स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, इन पांच इंद्रियों और क्रोध, मान, माया लोभ चार कषायों तथा निद्रा और स्नेहको लेकर मूल १५ प्रमादके भेदोंके अस्सी प्रकारके प्रमादभाव होते हैं जैसे स्त्रीकथानुरागी, स्पर्शनेंद्रियवशंगतः लोभी निद्रालु और स्नेहवान। इनका विरोधी अप्रमत भाव हैं, जहां आत्मा अपने शुद्ध उपयोगके सन्मुख होता है वहां अप्रमत्त भाव है। इस अप्रमत्त भावके लिये अनशनादि १२ तप व परीषहका विजय, उत्तम क्षमादि दश धर्म तथा अनित्य आदि १२ भावनाओंका पहले अभ्यास करना होता है। क्रोध, मान, माया, लोभ चार कषायोंके २५ भेद इस तरह होते हैं—

जिनके कारणसे सम्यग्दर्शन और स्वरूपाचरण चारित्र न हो वे अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ हैं-४

जिनके कारणसे श्रावकके व्रत न धारे जासकें वे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया लोभ हैं-४

जिनके कारणसे मुनिके व्रत न धारे जासकें वे प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया लोभ हैं-४

जिनके कारणसे पूर्ण चारित्र न हो वे संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ तथा नौ कषाय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद तथा नपुंसकवेद हैं-१३/२५

जैसी २ कषाय दबेगी वैसे २ संवर बढ़ता जाता है-जब बिलकुल कषाय न होकर वीतराग भाव होजाता है तब कषाय द्वारा आनेवाले कर्मोंका पूर्ण रुकना होजाता है।

संसारी जीवोंके मोक्ष पहुंचनेके लिये १४ प्रकारके चढ़नेके भावोंके भेद होते हैं उनमें चढ़ते २ यह जीव मुक्त होता है। इनको १४ गुणस्थान कहते हैं। इनमेंसे पहले तीन गुणस्थान १ मिथ्यात्व २ सासादन, ३ मिश्र बहिरात्मा अज्ञानी आत्माके होते हैं। चौथेसे ले बारह तक नौ गुणस्थान अंतरात्मा ज्ञानी आत्माके होते हैं-वे ये हैं-४ अविरतसम्यक्त्व ५ देशविरति, ६ प्रमत्तविरत, ७ अप्रमत्तविरत ८ अपूर्वकरण ९ अनिवृत्तिकरण १० सूक्ष्मलोभ, ११ उपशांतमोह, १२ क्षीणमोह। इनमेंसे ४ व ५ गुणस्थानवाले गृहस्थ श्रावक होते हैं तथा छठेसे बारहतक मुनि होते हैं। तेरह चौदह दो गुणस्थान १३ सयोगकेवली १४ अयोग

केवली परमात्मा अरहंतके होते हैं। इनके आगे सिद्ध हैं वे गुणस्थानोंसे बाहर हैं। ये १४ दरजे मोह और योगसे होते हैं। पहलेमें आश्रवके सब ही कारण पाए जाते हैं। दूसरेमें मिथ्यात्व बिना ४ कारण अर्थात अविरति, प्रमाद, कषाय, योग। तीसरेमें मिश्र दर्शन मोह सहित चारों कारण, चौथेमें भी यही चार कारण होते हैं। तीसरे चौथेमें अनंतानुबंधी कषाय अपना असर नहीं दिखाते। पांचवेमें अप्रत्याख्यानावरण कषायके दबनेसे एक देश अविरति, प्रमाद, कषाय, योग ४ कारण रहते, छठेमें प्रत्याख्यानावरण कषायके दबनेसे अविरति दूर होकर प्रमादादि ३ कारण रहते, सातवेंसे १० वे तकमें संज्वलनादिके मंद २ उदय होनेसे कषाय और योग दो ही कारण रहते हैं। ११ वें से १३ वें तकमें कषायके न रहनेसे केवल योग ही आश्रवका कारण रहता है। १४ वेंमें योग भी नहीं रहता इससे कर्मोंका आना बिलकुल न होकर पूर्ण संवर होजाता है। बंधे हुए कर्मोंके झड़नेको निर्जरा कहते हैं। जो अपने समयपर कर्म फल देकर झड़ता है वह सविपाक निर्जरा है। जो कर्म किसी विशेष निमित्तसे समयके पहले फल देकर अथवा तप द्वारा बिना फल दिये झड़ता है उसे अविपाक निर्जरा कहते हैं।

भवभवके बांधे कर्मोंके बंधन छुड़ानेका उपाय तप है—मुख्य तप आत्मध्यान है। आत्मानुभव करनेसे प्रचुर कर्मोंकी निर्जरा होती है। इस आत्मध्यानको सब ही अंतरात्मा अपनी शक्तिके अनुसार करते हैं। गृहस्थके थोड़ा जब कि साधुओंके विशेष आत्मध्यान होता है। इसी ध्यानसे चार घातिया कर्म काट अर-

हंत परमात्मा होजाता है तथा इसीके प्रतापसे ४ अघातिया कर्म भी दूर होते हैं और यह जीव सिद्ध परमात्मा या मुक्त रूप हो जाता है।

सातवां तत्व मोक्ष है--वह धर्मका फल है। मोक्ष एक अवस्थाका नाम है जहां आत्मा बिलकुल शुद्ध रहता है, न उसके पास ८ कर्मका बंधन है न शरीर है और न रागादि अशुद्ध भाव होते हैं। मुक्त जीव ऊर्द्ध गमन स्वभावसे जाकर लोकाकाशके अंत ठहरते हैं और अंतकाल तक अपने स्वरूपमें तन्मय रहते हैं। उनकी सत्ता सदा बनी रहती है।

इस तरह सात तत्व बहुत आवश्यक जानने योग्य हैं। इनहीमें पुण्य पाप जो कर्मबंधके मात्र शुभ और अशुभ भेद हैं और जो आश्रव और बंध तत्वमें गर्भित हैं, जोड़नेसे ९ पदार्थ कहलाते हैं।

आत्माकी मुक्तिका उपाय रत्नत्रय धर्म है। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र, ये तीन रत्न मोक्षके साधक हैं। इनके दो भेद हैं–अभेद या निश्चय रत्नत्रय, भेद या व्यवहार रत्नत्रय। साक्षात् साधक निश्चय है। निश्चयके लिये बाहरी सहकारी व्यवहार रत्नत्रय है।

अपने आत्माके असली शुद्ध स्वभावका विश्वास निश्चय सम्यग्दर्शन, उसका यथार्थ ज्ञान निश्चय सम्यग्ज्ञान और उसीमें लीन होना निश्चय सम्यग्चारित्र है। इससे श्रद्धान और ज्ञान पूर्वक निज आत्माका अनुभव या ध्यान करना निश्चय रत्नत्रय है जो आत्माका एक शुद्ध उपयोग है। इसीसे कर्मबंध कटते हैं।

जीव आदि ७ तत्त्व, ९ पदार्थ, ६ द्रव्य, पंचास्तिकायका तथा सच्चे देव अरहंत, सच्चे गुरु निर्ग्रन्थ साधु व सच्चे शास्त्र जिन वचनका श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है क्योंकि इनहीका मनन निश्चय सम्यक्तकी उत्पत्तिका कारण है। प्रथमानुयोग जिनमें महान पुरुषोंके चरित्र हैं। करणानुयोग जिनमें लोकरचनादि है। चरणानुयोग जिनमें साधु व श्रावकके आचरण हैं। तथा द्रव्यानुयोग जिनमें छः द्रव्योंका स्वरूप है। इन चार सच्चे वेदोंका अच्छी तरह अभ्यास करना व्यवहार सम्यग्ज्ञान है क्योंकि यही निश्चय सम्यग्ज्ञान जो आत्मज्ञान है उसका कारण है। साधु और श्रावकका हिंसादि पापके त्यागरूप व्यवहार सम्यग्चारित्र है यह परिणामको निराकुल रखकर आत्मानुभवका कारण है।

मुनिका व्यवहार चारित्र १३ प्रकार पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्तिरूप है। पूर्ण रूपसे बुद्धिपूर्वक हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रहको त्यागदेना पांच महाव्रत है। ४ हाथ जमीन देखकर दिनमें चलना ईर्या समिति, हितमित भाषा बोलना भाषा समिति, शुद्ध भोजनपान श्रावकके घर दिनमें एक दफे लेना एषणा समिति, निरखकर धरना उठाना आदाननिक्षेपण समिति और निर्जंतु भूमिमें मलमूत्र करना प्रतिष्ठापना समिति है। मन वचनकायको वश रखना तीन गुप्ति है। श्रावकका चारित्र ग्यारह प्रतिमा या श्रेणीरूप है। पहली प्रतिमामें भरती होनेकी योग्यता प्राप्त करनेको पाक्षिक श्रावकके नीचे लिखे नियम पाले-बदकर जूआ खेले नहीं, मांस खाए नहीं, शराब पीवे नहीं, शिकार खेले नहीं, चोरी करे नहीं, वेश्या सेवे नहीं, परस्त्री सेवे

नहीं, मधु खाए नहीं, बड़फल, पीपल फल, गूलर, पाकर और अंजीर फल खाए नहीं, बिना छना पानी पीवे नहीं, रात्रिको भोजन करे नहीं, रात्रि भोजन त्यागका अभ्यास करे यदि बिल्कुल न छोड़ सके तो औषधि व पानीके सिवाय और कुछ न खावे तथा रोज़ देव पूजा या दर्शन, गुरु भक्ति, शास्त्रस्वाध्याय, संयम, तप तथा दान इन छः कर्मोंका अभ्यास करे।

१–पहली दर्शन प्रतिमामें ऊपरके सब नियम पाले : साथमें जूआ आदि पापोंके अतिचारोंको भी छोड़े। वे अतिचार इस तरह हैं—

तास गंजीफा चौपड़ आदि भी न खेले, शुद्ध मर्यादाका भोजन खावे। भोजनकी मर्यादा इस भांति है। छने पानीकी ४८ मिनटके भीतर, गर्मकी १२ घंटे और उबाले हुएकी २४ घंटे छनेको फिर छानकर वर्त सकते हैं, पीसे आटेका जाड़ेमें ७ दिन, गर्मीमें ५ दिन, बर्सातमें ३ दिन, कच्ची रसोई दाल चावलकी ६ घंटे पूरी [illegible] मिठाई मुरब्बादि [illegible] घंटे [illegible] बिना अचार [illegible] घटेके त्याग, बिना घास न [illegible] वस्तुकी जाड़ेमें १ मास, गर्मीमें १५ दिन व बर्सातमें ७ दिन, दूध दोह-कर तुर्त छानकर औटाले तब २४ घंटे अन्यथा तुरन्त दहीकी २४ घंटे मर्यादा है। कोई तरहका नशा पीवे नहीं, भांग भी लेवे नहीं, तम्बाकू भी न लेवे, मद्दी व मांसके पशु व मनुष्योंकी भी खेद करे नहीं, चोरीका माल ले नहीं, वेश्याका नाच व गान देखे सुने नहीं, वेश्या या पर स्त्रीकी संगति रक्खे नहीं। गोभी कचनार आदि फूल (खाए नहीं), कीड़े जिसमें पड़ गए हों वे

फल खाए नहीं, स्वाद चलित फलादि खाए नहीं, विना फोड़े बंद चीजको मुंहमें दे नहीं, पानी छानकर जीवानी जहांसे पानी लिया हो वहीं पहुंचा देवे, रात्रि होनेके ४८ मिनिट पहले खा पी लेवे फिर ४८ मिनट दिन चढ़े खाए पीवे।

२. व्रत प्रतिमा-दोषोंको टालते हुए संकल्पी त्रस हिंसा करे नहीं। विना आरंभके जानबूझके किसी कीड़ेको मारे नहीं। राज्य दंड योग्य व पंचदंड योग्य दूसरेको ठगनेको झूठ बोले नहीं, चोरीमें गिरी पड़ी चीज़ भी उठावे नहीं, अपनी स्त्रीमें संतोष करे। धन धान्यादि १० प्रकारकी परिग्रहका प्रमाण करले कि जन्मभर मैं इससे अधिक न रक्खूंगा। ये श्रावकके पांच अणुव्रत हैं। इनको वृद्धि देनेके लिये तीन गुणव्रत हैं। जन्मभरके लिये लौकिक कार्यके लिये १० दिशाओंके जानेका प्रमाण करना दिग्व्रत है, उसीमें भी रोज २ आवश्यक दूर जानेका प्रमाण करना देशव्रत है। अनर्थके पाप करना नहीं जैसे पापका उपदेश देना, दूसरेका खोटा विचारना, खोटी कथा पढ़नी सुननी, प्रमादसे चलना व वर्तना तथा हिंसाकारी वस्तु मांगे देना।

मुनि योग्य व्रतोंकी शिक्षा देनेवाले चार शिक्षाव्रत हैं। सवेरे, मध्यान्ह या सांझ तीन, दो व एक दफे रागद्वेष छोड़कर सामायिक करना, अष्टमी चौदसको उपवास वा एक भुक्त करना, भोग उपभोगकी वस्तुओंका नित्य नियम करना, दान देकर भोजन करना इन १२ व्रतोंको जो पाले, पांच अणुव्रतोंके २५ दोष टाले, शेष ७ व्रतोंके अतीचारोंके टालनेका अभ्यास करे वह व्रत प्रतिमावाला है।

३–सामायिक प्रतिमा–अतीचारोंको टाल दिनमें तीन दफे सवेरे दो पहर सांझको सामायिक या आत्म ध्यान करे। ४८ मिनिट या अंतर्मुहूर्त लगावे।

४–प्रोषधोपवास प्रतिमा–हर अष्टमी चौदसको, ४८, ३६ व २४ घंटेका उपवास करे, धर्म ध्यानमें रहे, आरम्भ न करे–दोष टाले।

५–सचित्त त्याग प्रतिमा–जिह्वाकी स्वच्छंताको वश करनेके लिये कच्चा पानी, कच्चे फल, साग आदि न खावे, जीव रहित प्राशुक पानी व फलादि खावे।

६–रात्रिभुक्त त्याग–रात्रिको दूसरेको खिलावे नहीं व भोजन सम्बन्धी आरम्भ करे नहीं।

७–ब्रह्मचर्य प्रतिमा–अपनी स्त्रीका भी सेवन त्यागे, उदासीन वस्त्रादि रक्खे।

८–आरम्भ त्याग प्रतिमा–व्यापारादि व रसोई बनानादि आरम्भ छोड़ दे। आरम्भ न करे न करावे, सवारीपर चढ़े नहीं, जीव दयासे वर्ते।

९–परिग्रह त्याग–सब जायदाद बांट दे या दान करदे कुछ वस्त्र या कुछ वर्तन रखले, धर्मशालादिमें रहे।

१०–अनुमति त्याग–पुत्रादिको लौकिक कामोंके लिये जो सम्मति देता था सो बंद करदे।

११–उद्दिष्ट त्याग–अपने निमित्त किया हुआ आहार ले नहीं। इसके दो भेद हैं।

क्षुल्लक—एक लंगोट और एक खंड चादर रक्खे, मोर पिच्छका जीव दयाको, कमंडल शौचके लिये गर्म जलको रक्खे, दिनमें एक दफे भिक्षावृत्तिसे श्रावकके घर थालीमें भोजन करे। इसके पहलेके श्रावक १० वीं प्रतिमावाले भोजनके समय बुलानेसे व शेष पहलेसे निमंत्रण मान लेनेसे भोजन कर सक्ते हैं।

ऐलक—एक लंगोट रक्खे, पीछी कमंडल रक्खे, श्रावकके यहां बैठकर हाथमें भोजन करे, अपने केशोंका लोंच अपने हाथोंसे करे। इन प्रतिमाओंमें पीछेके व्रतोंमें आगेके व्रत बढ़ते जाते हैं। स्त्रियां भी इन ग्यारह प्रतिमाओंको पाल सक्ती हैं और श्रावकोंके समान सर्व पूजा पाठ दानादि क्रियाएं कर सक्ती हैं। केवल अंतर यह है कि जब वे ११ वीं प्रतिमामें आर्जिकाके व्रत पालें तब वे एक साड़ी सफेद रख सक्ती है, पीछी कमंडल रक्खें, केशोंका लोंच करें व श्रावकके यहां बैठकर हाथमें भोजन करें। स्त्रियां मुनिव्रत नहीं धार सक्ती, पुरुष नग्न हो साधुके व्रत पाल सक्ते हैं। इस व्यवहारचारित्रके द्वारा जितनी २ निराकुलता बढ़ती है उतना ही अधिक निश्चय सम्यक्चारित्रमें जो आत्म ध्यानरूप है बढ़ता जाता है।

इसी रत्नत्रयकी पूर्णता होनेपर यह जीव मोक्ष होजाता है

इस धर्मके सेवनसे इस आत्माको सदा आत्मीक सुख शांतिका लाभ होता है। आत्मबल बढ़ता है, पाप घटके पुण्य बढ़ता है, संकटमें धैर्य होता है तथा परलोकमें शुभ गति पाता हुआ अंतमें मुक्त होजाता है। इस तरह श्री ऋषभदेव द्वारा धर्मामृतका पान करके जयकुमार धर्मरससे परिपूर्ण होगया और मोक्षकी दृढ़

उत्कंठा करके संसार देह भोगोंसे वैराग्यवान हो मुनिव्रत धारनेका वांछावान होगया—अब इसे घरबार स्त्रीपुत्र सब पड़ोसीकी तरह दिखने लगे—इसका गाढ़ प्रेम मुक्ति सुंदरीसे होगया। इसने अपने कार्यमें विलम्ब न करके राज्य नीतिके अनुसार अपनी रानी शिवंकराके पुत्र अनंतवीर्यको राज्यका भार सौंपा और सर्वसे क्षमा भावकर अत्यन्त प्रिय सुलोचनाका भी रागभाव हटा उसे धर्म-भगिनी समझ उससे भी क्षमा भावकर श्री आदीश्वर महाराजसे साधुकी दीक्षाकी प्रार्थना की। श्री भगवानकी साक्षीसे वृषभसेन गणधरके निकट सर्व वस्त्राभरण त्याग नग्न दिगम्बर मुनि होकर तपस्या करता हुआ आत्मानंदका पान करने लगा। थोड़े ही समयमें चार ज्ञानका धारी होकर श्रीऋषभदेवके समवशरणमें ७१ वां गणधर होगया। अंतमें चार घातिया नाश केवलज्ञानी होकर आयुके अंतमें सर्व कर्मोंसे छूट मुक्त हो मुक्तिसुंदरीको वर लिया और सदाके लिये सिद्धसुखका भोक्ता होगया। सुलोचना सती जयकुमारके दीक्षा लेनेसे मछलीके समान तड़फने लगी—चित्तका धैर्य छूट गया। हृदय रुदनके भारसे भर आया। उसी समय भरत चक्रवर्तीकी पटरानी सुभद्राने समझाकर ऐसा शांत किया कि वह भी संसारसे उदास होगई। और उसने उसी समय ब्राह्मी आर्यिकाके पास जाकर आर्जिकाकी दीक्षा मांगी। यह ब्राह्मी ऋषभदेवकी पुत्री है। बाल ब्रह्मचारिणी है। यहां सर्व आर्जिकाओंमें मुख्य है। ब्राह्मीने धर्ममें दृढ़ करके आर्जिकाके नियम दिये। सुलोचनाने केशलोच कर धारण किये और यह भावना की कि शीघ्र ही कर्मरूपी पिंजरेसे आतमपक्षीको छुड़ाना चाहिये—आतमा-

नंद लेती हुई तपस्या करके देवायु बांध १६ वें स्वर्गमें जाकर स्त्रीलिंग छेद देव हुई। अब केवल १ भव लेकर मोक्ष जाना बाकी रह गया। इस तरह सुलोचनाने एक आदर्श जीवन श्राविका और आर्जिकाका बिताकर अपनेको मोक्षका पात्र बना दिया। यह सुलोचनाका चरित्र वर्तमान स्त्री समाजके लिये सुचारित्रवान होनेका व पतिव्रत धर्म पालनेका वहढ़ सम्यक्ती रहनेका एक सच्चा नमूना है। हरएक स्त्री व बालिकाको इस चरित्रको पढ़कर अपनी उन्नतिकी डोर हाथमें लेकर चलना चाहिये और प्रमादकी कीचड़से अपनेको बचाना चाहिये।

स्त्री समाजके लाभार्थ ही यह चरित्र लिखागया है, कोई अपना निजी स्वार्थ नहीं है। परोपकारी भाई व बहनोंका कर्तव्य है कि इस पुस्तकका सर्व स्त्री समाजमें प्रचार करें—सारे जगतकी बहनोंको इससे लाभ पहुंचेगा।

ग्रंथ समाप्त मिती जेष्ठ सुदी १४ वीर सं० २४४८ वि० सं० १९७९ गुरुवार ता: ८ जून १९१२ स्थान रांची जिला छोटा नागपुर (विहार स्थान जैन मंदिर धर्मशाला, सेठ जोखीराम मूंगराज अग्रवाल श्रावक।

शुभं भवतु, कल्याणं भवतु, दर्शन विशुद्धिर्भवतु।

—⊛—

ग्रंथकर्ताका संक्षिप्त परिचय।

अग्रवाल शुभ वंशमें, गोयल गोत्र महान।
मंगलसेन महा यशी, श्रावक सब गुण खान॥
ताके मक्खनलालजी, सुत गृह ईसा महान।
पुत्र चार ताके भए, निज निज भाग्य प्रमान॥
अवध लक्ष्मण पुरि रहैं, साधत श्रावक धर्म।
श्रमी मात नरायणदे, पालन कर वहु सर्म॥
श्रेष्ठ सु शांतिलालजी, गृह रत पालत धर्म।
मैं तृतीय सीतल भयो, गृह उदास तजि भर्म॥
बारह वर्ष गए अभी, श्रावक धर्म सहाय।
ब्रह्मचारि व्रत पालते, आत्मानन्द बढ़ाय॥
बालपने विद्या कछू, पढ़ी सु निज रुचि लाय।
ताबल जिन सिद्धांतका, लखा रहस सुखदाय॥
कुंद कुंद आचार्य मत, श्रद्धा भई अपार।
समयसार टीका रची, शतक समाधि सार॥
टीका इष्टोपदेशकी, आत्म धर्म रचि ग्रंथ।
आदि कथन कुछ बन पड़े, महिमा श्रीजिन पंथ॥
'जैनमित्र' साप्ताहिकी, सम्पादन गुणद्वार।
प्रेम सहित जिन ज्ञातिकी, सेवामें मन धार॥
स्याद्वाद विद्याधरा, काशी तट गंग धाम।

विद्यार्थी गुणवर बनें, चाहा आठों जाम ॥
जैन सु बालक बालिका, विद्या भूषण सार।
पढ़र बने वीरात्मा, यही भावना धार॥
अनुपम सतपथ दर्शकं, है चरित्र यह सार।
धन्य सती शुभ लोचना, शील ज्ञान भंडार॥
आदिपुराण सुग्रंथको, रचियो श्री जिनसेन।
भद्र सुगुण पूरण कियो, तासों ले शुभ वचन॥
रचना करी स्वबुद्धिसे, सुगम नागरी भाप।
नरनारी पढ़ हित करैं, यही भावना राख॥
ज्येष्ट सुदी चौदस गुरु, नौ साते नौ एक।
विक्रम वर्ष समाप्त किय, धर हिरदै जिन टेक॥
रांची नगर सुहावना, जिन मंदिर हपसाल।
बैठ सुसाता ग्रंथ लिख, भयो सफल सब काल॥
गए चवालिस वर्ष शुभ, आयु कर्ममें बीत।
शेष समय जावे सभी, जिन गुण चिंतत बीत॥
होय भला सब जगतका, सब पावें सतज्ञान।
सब ही आतम सुख लहैं, दया धर्म हिय आन॥
यही भावना नित रहे, अर सुमरण जिन सार।
जा प्रसाद अध्यातममें, बाढ़े मति हितकार॥

इति ८-६-२२

द० ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद।